शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जनवरी : १९६३ ☆ वर्ष अठारहवाँ, पौष, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : ९

चैतन्य समुद्र में डुबकी लगाओ

अहो, अपने अंतर में जो आनन्द का सागर उछल रहा है, उसे तो जीव देखता नहीं है और तृणसमान तुच्छ विकार को ही देखता है... संत कहते हैं कि अरे जीवो! इसप्रकार अंतर में लहराते हुए आनन्द के सागर को देखो.... चैतन्य समुद्र में डुबकी लगाओ!

अंतर में जो आनन्दसागर लहरा रहा है, उसे भूलकर अज्ञानी जीव बाह्य में क्षणिक पुण्य का ठाट-बाट देखता है और उसी में सुख मानकर मूर्च्छित हो रहा है। किंचित् प्रतिकूलता दिखायी दे तो दु:ख में मूर्च्छित हो जाता है; किंतु परम महिमावंत अपने आनन्द स्वभाव को नहीं देखता। ज्ञानी तो जानते हैं कि मैं स्वयं ही आनन्दस्वभाव से परिपूर्ण हूँ। कहीं बाह्य में मेरा आनन्द नहीं है और न मेरे आनन्द के लिये किसी बाह्य पदार्थ की आवश्यकता है;—ऐसा भान होने से ज्ञानी बाह्य में पुण्य-पाप के ठाठ में मूर्च्छित नहीं होते, किंतु अंदर में डुबकी लगाकर आनन्द का अनुभव करते हैं।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२१२]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

समयसार प्रवचन भाग ४

कर्ता-कर्म अधिकार पर पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा विस्तार से प्रवचन (गाथा ६९ से १४४) अंधकार हटाना नहीं पड़ता, प्रकाश होते ही अंधेरा उत्पन्न नहीं होता; इसप्रकार निर्मल तत्त्वज्ञान का अभ्यास करके भेदविज्ञान ज्योति अपनी आत्मा में प्रगट करने से अनादिकालीन महान भूल मिट जाती है। श्री समयसारजी शास्त्र में अत्यन्त अप्रतिबुद्ध को अपूर्व तत्त्वज्ञान समझाया है।

कर्ता-कर्म के संबंध में जीव की भूल होने से मिथ्या अभिप्राय वश अज्ञानी जीव दु:खी हो रहा है, वह भूल कैसे मिटे, स्वानुभव कैसे हो, यह बात स्पष्ट करके समझाई है।

पृष्ठ संख्या ५६४, कपड़े की जिल्द, मूल्य (लागत से भी बहुत कम है) ४-०, पोस्टेज १-६० अलग।

अनुभवप्रकाश

लेखक, अनुभवी विद्वान श्री दीपचंदजी कासलीवाल जो २०० वर्ष पूर्व हो गये। इस ग्रंथ में आत्मानुभव को सुगम-रीति से समझाया गया है। पृष्ठ १२६, मूल्य ०-३५ पोस्टेज अलग।

शासन प्रभाव

जिसमें पूज्य कानजी स्वामी का जीवन चरित्र भी है। मूल्य ०.१२।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बालचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जनवरी : १९६३ ☆ वर्ष अठारहवाँ, पौष, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : ९

सुशील और कुशील

अज्ञान कुशील है, ज्ञान सुशील है

[अष्टप्राभृत-शीलप्राभृत के प्रवचनों से]

सम्यग्ज्ञान में और सुशील में विरोध नहीं है। अंतर के चिदानंदस्वभाव को स्वध्येय बनाकर जो परिणमित हुआ, वह ज्ञान ही सुशील है, वह विषय-कषायों से रहित है। इसप्रकार सम्यग्ज्ञान में और शील में विरोध नहीं है। और जो ज्ञान, राग को ही ध्येय बनाकर विकार में ही वर्तता है, वह कुशील है—अज्ञान है। अज्ञान के कारण वह विषय कषाय में ही वर्तता है; इसलिये अज्ञान ही कुशील है। स्वभावगृह का संग छोड़कर बाह्य-विषयों में जो ज्ञान एकतारूप से वर्तता है, उस ज्ञान की प्रकृति कुशील है, वह अज्ञान है। सम्यग्दृष्टि का ज्ञान तो अपने चैतन्यस्वभाव को ही विषय बनाकर उसी में वर्तता है; राग को वह अपने से पृथक् जानता है; इसलिये राग के साथ एकतारूप मिथ्यात्व का कुशील उसके नहीं है।

मिथ्यात्व, वह महान कुशील है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भाव, वह सुशील है। जब तक बाह्य विषयों से भिन्नता को न जाने और राग की रुचि छोड़कर ज्ञानभाव में न वर्ते, तब तक कुशील का सेवन नहीं छूटता। जिसे शुभराग की रुचि है, उसे भी अभिप्राय में विषयों की रुचि विद्यमान है, इसलिये वास्तव में वह कुशील का ही सेवन कर रहा है। सम्यग्ज्ञान के बिना बाह्य विषयों से विरक्त हो, तथापि उसे सुशील नहीं कहते, क्योंकि राग से तो उसके परिणाम विरक्त नहीं हुए हैं। भेदज्ञान के बिना राग से विरक्ति नहीं होती और राग से विरक्ति हुए बिना विषयों से भी सच्ची निवृत्ति नहीं होती; इसलिये सम्यग्दर्शन के बिना कुशील का सेवन नहीं छूटता।

जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ ज्ञान ने अपने से भिन्न भावों को पृथक् जाना, बाह्य विषयों को भिन्न माना और रागादि को पृथक् जानकर उसके त्याग की बुद्धि हुई तथा निर्विकार चैतन्यस्वभाव की ही भावना हुई। जितनी स्वभाव परिणति हुई, उतना शील प्रगट हुआ और उतना ही कुशील छूटा। अहो, निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र के सेवन का प्रसंग आया, उसमें भी राग की रुचि और राग का सेवन न छोड़े तो ऐसा अवसर यों ही चला जायेगा। भाई, सुशील अर्थात् 'सम्यक्प्रकृति' तो स्वभाव के सेवन में है, और कुशील अर्थात् बुरी परिणति—खराब प्रकृति तो विभाव के सेवन में है। राग करते-करते लाभ होगा, ऐसा जो मानता है उसे राग का सेवन है, और जिसके राग का सेवन है, उसके कुशील का ही सेवन है। धर्मात्मा तो राग से भिन्न चिदानंदस्वभाव की ओर उन्मुख होकर सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसी का सेवन करते हैं, उसी का नाम सुशील है।

अशुभपरिणाम ही कुशील है और शुभपरिणाम, वह सुशील है—ऐसा अज्ञानी लोग मानते हैं, किंतु आचार्यदेव ने समयसार में स्पष्ट कहा है कि—हे भाई! जिसका फल संसार हो, उसे सुशील कैसे कहा जा सकता है? शुभपरिणाम का फल भी संसार ही है, तो उसे सुशील कैसे कहा जायेगा? रागमात्र कुशील है—फिर वह अशुभ हो या शुभ हो; अशुभ और शुभ यह दोनों भाव चैतन्यस्वभाव से बाह्य प्रकृतिरूप हैं, और जो चैतन्यस्वरूप से बाह्य है, वह कुशील है। ऐसे शुभाशुभ को अपना कर्तव्य मानना या उससे लाभ मानना, वह महान मिथ्यात्वरूप कुशील है।

वास्तव में अज्ञान, वह कुशील है और सम्यग्ज्ञान, वह सुशील है। अनंत-संसार के कारणरूप जो क्रोधादि भाव हैं, उनका जिस ज्ञान में से अभाव न हो, वह ज्ञान कुशील है। जिसमें अकेला क्षयोपशम हो, उस ज्ञान को वास्तव में ज्ञान नहीं कहते; जो ज्ञान अंतरोन्मुख होकर अपने चैतन्यस्वभाव के साथ केलि करे और परभाव में किंचित्मात्र तन्मय न हो, उसी को ज्ञान कहा जाता है और वही सुशील है। जहाँ ऐसा सम्यग्ज्ञान है, वहीं शील होता है, और अकषायभावरूप शील ज्ञान के बिना नहीं होता। भले ही ग्यारह अंग का पाठी हो, परंतु यदि रागादि परभाव में तन्मयता न छोड़े तो वह कुशील ही है। शील अर्थात् प्रकृति अथवा स्वभाव; अज्ञान की प्रकृति क्या?—कि जीव को संसार में परिभ्रमण कराना; इसलिये अज्ञान, वह कुशील है। और सम्यग्ज्ञान की प्रकृति क्या?—कि जीव को कषायों से छुड़ाकर मोक्ष प्राप्त कराना;—ऐसा ज्ञान, वह सुशील है। अज्ञान संसारप्रकृतिवाला है और सम्यग्ज्ञान मोक्षप्रकृतिवाला है।

जहाँ सम्यग्ज्ञान हुआ, वहाँ चैतन्य से बाह्य समस्त विषयों में से सुखबुद्धि छूट गई; उन

विषयों को अपने से भिन्न जानकर ज्ञान उनसे पृथक् हुआ और अपने अकषायस्वभाव की ओर उन्मुख हुआ; उसका नाम सुशील है। यदि ऐसा सुशीलपना न हो और बाह्य विषयों को ही ध्येय बनाकर ज्ञान वर्ते, तब तो बाह्य विषयों की मिठास से ज्ञान का नाश होता है। सम्यग्दृष्टि को अस्थिरता के राग से जो इन्द्रिय विषय हैं, उतनी चारित्रदशा रुकती है; किंतु अंतर में प्रतीति है कि यह राग मेरे स्वभाव की प्रकृति नहीं है, वह तो विभाव है; इसलिये उस सम्यग्दृष्टि के श्रद्धा-ज्ञान में तो सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान का नाश नहीं होता। परद्रव्य का संसर्ग छोड़कर ब्रह्मस्वरूप आत्मा में लीन होना, वह परम ब्रह्मचर्य है, उसे भी शील कहा जाता है; और व्यवहार में स्त्री आदि का संग छोड़ना, उस ब्रह्मचर्य को भी शील कहते हैं; उसका भी इसमें समावेश हो जाता है; क्योंकि चैतन्य को जानकर फिर जहाँ उसकी भावना में लीन हो, वहाँ बाह्य विषयों की ओर की वृत्ति सहज ही छूट जाती है। जहाँ निजस्वभाव में उपयोग की प्रवृत्ति हुई, वहाँ परभाव से तथा परविषयों से उपयोग छूट गया; उसका नाम सुशील है।

आचार्यदेव कहते हैं कि भाई, प्रथम तो जगत में सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति अति दुर्लभ है; और ज्ञान प्राप्त करने पर भी उसकी बारम्बार भावना एवं अनुभव करना तथा विषयों को छोड़कर चैतन्य में स्थिर होना वह अति दुर्लभ है। अतीन्द्रिय चैतन्यस्वभाव की रुचि इन्द्रियविषयों की रुचि छूटे बिना नहीं होती और उसके पश्चात् भी उन इन्द्रियविशयों का अनुराग छूटे बिना चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता नहीं होती। बाह्य विशयों के ओर की वृत्ति चैतन्य की स्थिरता को बिगाड़ती है, और यदि बाह्यविषयों में रुचि या सुखबुद्धि हो जाये तो चैतन्य की श्रद्धा भी बिगड़ जाती है। इसलिये चैतन्य को स्वध्येय बनाकर उसमें एकाग्रता द्वारा विषयों की ओर की वृत्ति का त्याग, वह सुशील है।

जब तक जीव स्वविषय को भूलकर बाह्यविषयों के ही वशीभूत वर्तता है, तब तक वह अपने वास्तविक ज्ञान को नहीं जानता। और ज्ञान के बिना मात्र बाह्यविषयों की विरक्ति से भी कर्म का क्षय नहीं होता। द्रव्यलिंगी मुनि होकर बाह्यविषयों को तो छोड़ा, किंतु अंतर में राग की रुचि नहीं छूटी, तो उसने वास्तव में विषयों को छोड़ा ही नहीं है और उसे कर्मों की निर्जरा नहीं होती।

निर्जरा-अधिकार में आचार्यदेव कहते हैं कि—ज्ञानी नियम से ज्ञान-वैराग्य की शक्तिवाला होता है:—

ज्ञानकला जिसके घट जागी, ते जगमांहि सहज वैरागी...
ज्ञानी मगन विषय सुख मांही,—यह विपरीत संभवै नाहीं।

अहो, सम्यग्दृष्टि के अंतर में ज्ञानकला जागृत हुई वहाँ वह सारे जगत् से विरक्त हो गया, उसने समस्त जगत से अपने चैतन्यतत्त्व को भिन्न जाना, इसलिये उसमें कहीं स्वप्न में भी सुखबुद्धि नहीं रही। ज्ञानी बाह्यविषयों में सुख मानकर उनमें मग्न हो—ऐसी विपरीतता कभी संभव नहीं है। सुख तो अपने चैतन्य में ही भासित हुआ है, इसलिये उससे बाहर अन्यत्र कहीं धर्मी को तन्मयता नहीं होती। ज्ञानसहित वैराग्य में ही कर्म का क्षय करने की शक्ति है।

अज्ञानी परविषयों को इष्टरूप या अनिष्टरूप मानकर उसी में उपयोग को घुमाते हैं, वह कुशील है। परभाव में प्रवृत्ति ही कुशील है; और चिदानंदस्वभाव को जानकर उसमें उपयोग प्रवर्तन करे, वह सुशील है। अज्ञानी कदाचित् शुभराग से बाह्य विषयों को छोड़ दे, किंतु उसका उपयोग तो राग में ही लीनतारूप वर्तता है; इसलिये उसे बहिर्मुख वृत्तिरूप कुशील का ही सेवन है; कर्म का क्षय करने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। सम्यग्ज्ञान होने पर अंतर्मुखवृत्ति हुई, तब परभाव छूटने लगे और कर्म खिरने लगे। इन कर्मों का क्षय करने की सामर्थ्य ज्ञान में ही है, शुभराग में ऐसी सामर्थ्य नहीं है। सम्यग्ज्ञान ही सुशील है... अज्ञानी शुभराग करे, तथापि उसे सुशील नहीं कहते।

अहो, सम्यक्श्रद्धा और सम्यक्ज्ञान के बिना संयम या तप सब निरर्थक है; और सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान के पश्चात् चारित्रदशा महाप्रयत्न से होती है। सम्यक्श्रद्धा-ज्ञानसहित चारित्र भले ही थोड़ा हो, तथापि उसका फल महान है और सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान के बिना चाहे जितना आचरण करे, तथापि वह निरर्थक है।

शास्त्र द्वारा यह ध्यान में आया कि आत्मा का ज्ञानस्वभाव ही उपादेय है और रागादि समस्त परभाव हेय हैं,—ऐसा हेय-उपादेय का ज्ञातृत्व होने पर भी यदि ज्ञान को अंतरोन्मुख करके स्वभाव का ग्रहण तथा परभाव का त्याग न करे तो उसका ज्ञातृत्व निरर्थक है। परिणति में स्वभाव का वेदन न हो तथा राग के वेदन से पृथक् न हो तो वह ज्ञान वास्तव में ज्ञान नहीं है। स्वभाव के ग्रहणरूप ज्ञान और राग के त्यागरूप वैराग्य के बिना बाह्य वेश या ज्ञातृत्व सब व्यर्थ हैं।

प्रथम तो स्वभाव क्या और विभाव क्या—उसका सम्यक्भेदज्ञान होना चाहिये। भेदज्ञान सहित थोड़ा भी आचरण हो अर्थात् थोड़ी भी स्वरूप स्थिरता हो तो उसका फल महान है और भेदज्ञान के बिना चाहे जितने शुभ आचरण करे, तथापि वे धर्म के लिये निष्फल हैं। इसलिये

अज्ञानसहित जितने आचरण हैं, वे सब कुशील ही हैं। शुभ आचरण करते-करते निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हो जायेगा—ऐसा मानकर जो राग का सेवन करता है, वह कुशील का सेवन करता है; उसका ध्येय ही मिथ्या है, और मिथ्यात्वसहित अनंतानुबंधी कषाय तो उसको वर्त ही रहा है। अंतर में सम्यग्ज्ञान द्वारा निर्दोष चैतन्य को ध्येय बनाकर उसका ग्रहण किये बिना विषय-कषायों का त्याग नहीं हो सकता। अतीन्द्रिय चैतन्य के आनन्द का वेदन होने से इन्द्रियविषयों का अवलम्बन छूट जाता है, उसका नाम सम्यक्शील है। बाह्य में स्त्री-आदि का अवलम्बन छोड़ा, किंतु अंतर में राग का अवलम्बन नहीं छोड़ा; शुभराग के अवलम्बन से लाभ होगा—ऐसी बुद्धि नहीं छोड़ी तो उस जीव ने विषयों को छोड़ा ही नहीं है; बाह्य विषयों के ही अवलम्बन की बुद्धि उसको पड़ी है। ज्ञानी तो अपने आत्मा को सर्व बाह्य पदार्थों के अवलम्बन से रहित, राग के भी अवलम्बन से रहित, ज्ञानमात्रभावमय जानते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप निर्मलभाव प्रगट हुआ, वह अतीन्द्रिय स्वभाव के ही अवलम्बन से ही प्रगट हुआ है, उसमें राग का या बाह्य-विषयों का अवलम्बन छूट गया है, उसका नाम सम्यक्शील है।

जहाँ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ, वहाँ महाप्रयोजनरूप ऐसे स्वज्ञेय को जाना, अनंतानुबंधी कषाय का अभाव हुआ और स्वरूपाचरणचारित्र की प्राप्ति हुई; उसका फल भी इतना महान है कि अनंत संसार का छेदन करके अल्पकाल में ही जीव को मुक्ति प्राप्त कराये। ज्ञान को अंतर्मुख करके जहाँ स्वज्ञेय को जाना, वहाँ भले ही अन्य ज्ञातृत्व का विकास अल्प हो और तप भी थोड़ा हो, तथापि अल्प आचरण द्वारा उस महान फल को प्राप्त करता है। शुद्धता की कला सम्यक्त्वी के विकसित होती रहती है। कोई जीव अज्ञानपूर्वक आचरण से नववें ग्रैवेयक तक जाये और कोई क्षायिक सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पहले स्वर्ग में जाये; तथापि ज्ञानी को प्रतिक्षण अंतर की चैतन्यकला एवं चैतन्य की शुद्धता का विकास होता ही रहता है। अरे, श्रेणिक राजा क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे; वे वर्तमान में नरक-निवास कर रहे हैं, तथापि सम्यक्त्व के प्रताप से प्रतिक्षण चैतन्य की शुद्धता प्राप्त करते हैं। मिथ्यादृष्टि मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ (सम्यग्दृष्टि) भी श्रेष्ठ है। मिथ्यादृष्टि मुनि हुआ हो, तथापि उसे 'चलता शव' कहा है; और सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को 'छोटे से सिद्ध' (इषत् सिद्धि) कहा है।

अहो, आत्मज्ञान क्या वस्तु है, उसकी लोगों को खबर नहीं है; बाह्य आचरण देखकर ही महिमा करने लगते हैं; किंतु ऐसे आचरणरूपी घास के पूलों को तो अज्ञानरूपी भैंसा अनंत बार चर

गया है !—अनंत बार शुभआचरण करने पर भी संसार से किंचित् उद्धार नहीं हुआ। यदि आत्मा की प्रतीतिपूर्वक एक बार भी सम्यग्दर्शन प्रगट कर ले तो एक क्षण में अनंत संसार कट हो जाये और अल्प काल में मोक्षपद की प्राप्ति हो।—ऐसा सम्यग्दर्शन का महान फल है।

जो जीव विषयों से विरक्त नहीं होता और चैतन्य की भावना नहीं भाता, वह मोह के कारण चार गतिरूप संसार में भटकता है। और जो जीव अंतर्मुख होकर, विषयों से विरक्त होकर बारम्बार चैतन्य के अनुभवरूप भावना भाता है, वह चार गति का छेदन करके मुक्ति प्राप्त करता है। अतीन्द्रिय चैतन्य की भावना से उत्तम शील के सर्व गुण परिपूर्ण होते हैं और भव का नाश हो जाता है। जिसप्रकार सुवर्ण को धोने के बाद गेरु लगाने से उसमें एकदम चमक आ जाती है, उसीप्रकार निर्मल सम्यग्ज्ञानरूपी जल से आत्मा को धोकर, विषयों से विरक्तिरूप गेरु लगाने पर शुद्धता होती है और वह अनंत चतुष्टय से जगमगा उठता है।

जो जीव शास्त्र-ज्ञानादि से गर्वित होकर विषयों में ही रंजित वर्तता है और वैराग्य प्राप्त नहीं करता, वह कापुरुष है—कायर है। वहाँ कहीं ज्ञान का दोष नहीं है, किंतु उस जीव की विपरीत दृष्टि का दोष है। अरे, मूढ़ जीव शास्त्रज्ञान प्राप्त करने पर भी उपशम को प्राप्त नहीं कर पाते, वे मंदबुद्धि जीव विषयों में ही वर्तते हैं। भले ही ज्ञान का विकास अधिक हो, तथापि उन्हें मंदबुद्धि ही कहा है। चैतन्य की सन्मुखता सहित सम्यग्ज्ञान तो है नहीं, और बाह्य के ज्ञातृत्वरूप ज्ञान से गर्वित होकर वर्तते हैं, तथा स्वच्छंदता से विषय कषायों का पोषण करते हैं, किंतु चैतन्य की ओर सुकाव करता नहीं है तो वह जीव की विपरीत परिणति का ही अपराध है; उसमें ज्ञान का कोई दोष नहीं है। भाई, चारों ओर से चिंता को हटाकर अपने उपयोग को स्वभावोन्मुख कर.... इसप्रकार चैतन्य के ध्येय से पूर्णानंद प्रगट होगा।

परमार्थ के अनुभव का उपदेश

समयसार के अंत में आचार्य प्रभु कहते हैं कि—''शुद्धज्ञान का अनुभवन ही एक परमार्थ है;''—इसी विषय पर यह प्रवचन है। इसमें गुरुदेव ने साथ-साथ यह भी बतलाया है कि—ऐसा अनुभव करनेवाले अथवा ऐसा अनुभव करने की तैयारीवाले जीव का व्यवहार कैसा होता है ? उसकी पात्रता कैसी होती है ? कषाय की मंदता और धर्मात्मा के प्रति प्रमोद कैसा होता है ?—यह सब गुरुदेव की अद्‌भुत वैराग्य पूर्ण वाणी से श्रवण करते हुए श्रोतागण भक्ति से गद्‌गद् हो जाते थे। राजकोट में एकबार रात्रिचर्चा के समय पूज्य गुरुदेव ने जिसका उल्लेख किया था वह यही प्रवचन है। यह प्रवचन जिज्ञासुओं के लिये खूब उपयोगी होने के कारण प्रकाशित कर रहे हैं।

[संवत् २०१७, माघ कृष्णा ४ के दिन सोनगढ़ में पूज्य गुरुदेव का प्रवचन]

यह समयसार का सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है। भगवान आत्मा मात्र अकेला ज्ञानस्वभावभाव स्वरूप है; ऐसे ज्ञानस्वभाव की अंतर्दृष्टि में तन्मय होकर जो उसे नहीं जानते, उसका वेदन नहीं करते, दृष्टि को अंतर्मुख स्थिर नहीं करते, ऐसे जीवों को धर्म नहीं होता... चाहे वे श्रावक हों या मुनि हों... श्रावकों के लिये भी यह एक ही बात है और मुनि के लिये भी एक ही बात है।

शुद्धज्ञान ही एक है—ऐसा निस्तुष अनुभवन वह परमार्थ है। भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति चैतन्यज्योति, शक्ति में परिपूर्ण सत्त्वस्वभावी है; वह राग और परपदार्थ में सचमुच व्याप्त ही नहीं है। राग और विकल्प से पार ऐसा जो आत्मा का त्रैकालिक आनन्द और ज्ञानस्वभाव, उसका जो निस्तुष-निर्मल अनुभव, सो परमार्थ है। श्रावक के लिये भी यह वस्तु है; श्रावक को भी निर्मल अनुभव होता है। आत्मा के शुद्ध चैतन्यद्रव्य में—अंतर में एकाकार होने पर जो शांति और ज्ञान का निर्मल वेदन होता है, वह श्रावक का परमार्थधर्म है। अन्य स्थान पर व्यवहार से कथन आया हो, वहाँ ऐसा जानना कि अशुभ से बचने के लिये शुभ का ऐसा काल उसके होता है।

भक्ति-पूजा-विनय आदि का भाव होता तो है; तथापि वह भाव ज्ञान-स्वभाव में तन्मय नहीं है। वह भाव, स्वरूप की अस्थिरता के काल में भिन्न स्वरूप में होता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय, बहुमान, पूजा ऐसे भाव होते हैं, किंतु वह राग मंद कषाय है तथा वह पुण्य बंध का

कारण है, मोक्ष का कारण वह नहीं है; श्रावक को भी वह मोक्ष का कारण नहीं है। पूजा-भक्ति या दानादि श्रावक के लिये मोक्ष का कारण है—ऐसा जो कहा गया है, वह व्यवहार से है; किंतु परमार्थतः ऐसा नहीं है। चैतन्य प्रभु ज्ञानसमुद्र-जिसके मध्यबिंदु में केवलज्ञान की अनंत-अनंत पर्यायें प्रगट होने का सामर्थ्य हो—उसमें एकाकार होकर ज्ञान का निस्तुष अनुभवन करना, सो परमार्थ मोक्ष कारण है। उसमें व्यवहार के राग की मिलावट नहीं है; रागरूपी भूसी नहीं है। तुष अर्थात् भूसी; निस्तुष अर्थात् भूसीरहित। व्यवहार होता अवश्य है, किंतु स्वभावसन्मुखता के निर्मल अनुभव में उस व्यवहार की मिलावट नहीं है।

आत्मा चैतन्यस्वरूप स्वभाव है; जहाँ देखो, वहाँ ज्ञान और ज्ञान ही मुख्यतः भासित होता है। ऐसे ज्ञानस्वरूप में अंतर्मुख एकाग्र होकर अचल दृढ़ प्रतीति और अंतर अनुभव होना - यह एक ही अनुभवज्ञान की निर्मल दशा मुक्ति का कारण है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की स्थिरता का अंश—यह तीनों बोल उसमें आ गये। ज्ञान का ऐसा निस्तुष अनुभवन ही परमार्थ है।

जीव नरक में हो या गृहस्थाश्रम में हो, स्त्रीरूप में हो, पुरुषरूप में हो या नपुंसकरूप में हो,—यह सब जड़ के वेश हैं; इन जड़ के वेशों में कहीं ज्ञान की या धर्म की छाप नहीं है। उनसे पार अकेला चैतन्यपरमार्थस्वभाव जो अनादि-अनंत चैतन्यसत्त्व है, उसमें एकाग्रता से स्वभावसन्मुखदशा की निर्मलता—यह एक ही परमार्थ है।

देखो न, संवत् २०१५ की साल में बम्बई में विशाल जिनमंदिर और बड़े-बड़े महोत्सव हुए। एक लाख नब्बे हजार रुपये खर्च हुए और दो लाख अट्ठावनहजार की आमदनी हुई;—क्या यह सब दान अधिकार के प्रवचन से हुआ न? पहली बार (संवत् २०१३ में) भक्ति अधिकार पर प्रवचन हुए थे और दूसरी बार (संवत् २०१५ में) दान अधिकार पर प्रवचन हुए। भक्ति-दानादि के भावों का होना व्यवहार है और उसका स्वरूप भी यथावत् बतलाना चाहिये न?

(एक श्रोता कहते हैं:) महाराज वहाँ भक्ति और दान का उपदेश देकर लाखों रुपये इकट्ठे करवा दिये, तो साथ-साथ कुछ ऐसा भी कहते जाओ जिससे मनुष्य के हृदय में दया दान का भाव आये!..... फिर भले ही धर्म के लिये वह शुभभाव काम की चीज़ न हो।

(उसका उत्तर देते हुए गुरुदेव ने अत्यंत वैराग्यपूर्ण भाषा में कहा:)

देखो भाई, बात यह है कि—सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की विनय तो सर्वप्रथम होना चाहिये।

यह बात तो आवश्यक है। जिसे आत्मधर्म का पालन करना है, उसे ज्ञानी और ज्ञान, दर्शनी और दर्शन; चारित्री और चारित्र, तथा उन्हें प्राप्त देव, गुरु और उनका कथन करनेवाले शास्त्र के प्रति बहुमान, विनय, अविनय का अभाव, विरोध का अभाव—ऐसा भाव होता ही है; जिसे वह न हो, उसे कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता।—यह बात तो अनेकों बार आती है; अभी तो यहाँ परमार्थ मोक्षमार्ग क्या है—उसकी बात चल रही है।

उपरोक्त कथन में कषाय की मंदता का पुण्य भाव है; जिसे इतना भी भाव न हो, वह उसके बिना सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता; तथा उस भाव से सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले ऐसा भी नहीं है।

ज्ञानस्वरूप भगवान, ज्ञानी आत्मा और ज्ञानस्वरूप जिनको प्रगट हुआ है, ऐसे सर्वज्ञ देव—उनका नाम, उनकी स्थापना, उनका द्रव्य, उनकी योग्यता और उनका भाव—यह सब पूज्य हैं। उनकी मर्यादा शुभभाव जितनी है, किंतु उसका अनादर या विरोध हो और कोई धर्म या ज्ञान प्राप्त कर ले, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं हो सकता। ज्ञानी का विरोध करे, ज्ञानी की अविनय करे, ज्ञानी की आसातना करे, ज्ञानी के प्रति द्वेष करे, उनकी अविनय करे यह तो तीव्र मिथ्यात्व और तीव्र पाप है। उससे बचने के लिये भक्ति आदि का शुभभाव होता है किंतु उस भाव की मर्यादा राग की मंदता तक आती है।

एक ज्ञानी—सम्यग्दृष्टि चाण्डाल हो, तथापि उसे देखकर जिज्ञासु जीव को ऐसा लगता है कि अहो! यह धर्मात्मा हैं.... मुझसे महान अधिक आत्मज्ञानी हैं... इनके किसी भी वचन का विरोध, किसी भी भाव का विरोध धर्म-जिज्ञासु को नहीं होता... अभी धर्म प्राप्त कर लेने की बात तो दूर रही।

इतनी बड़ी बात यों ही सुन ले और माने कि अब अपने को ज्ञान हो जायेगा... अभी प्रारम्भिक पात्रता का ठिकाना न हो तो वह कहाँ से धर्म प्राप्त करेगा?—यह बातें तो अनेकों बार आ चुकी हैं... और जो आ चुकी हों, उनमें से बहुत सी बातों का तो विस्मरण ही हो जाता है!—भगवान! यह बातें तो कोई और ही हैं! स्व-स्वभाव तो प्राप्त करने की प्रथम योग्यता में—उपदेश श्रवण करने की योग्यता में, विनय में, पात्रता में-कितनी कषाय मंद होगी! कितनी कोमलता होगी! शास्त्र में कहते हैं कि जिसप्रकार सुवर्ण मोड़ने से मुड़ता है—ऐसी जिसके कषाय की मंदता हो—तथापि वह कषाय-मंदता का लक्ष तो पर के ऊपर है; स्वोन्मुख लक्ष करने के लिये उसे सहायक नहीं कहा जाता।—दो बातें हैं।

यह तो अमृत का प्याला है ! अजर अमर होने का मार्ग है.... कोई साधारण बात नहीं है... यह पोपाबाई का राज्य नहीं है कि—लो, इतने क्रियाकाण्ड कर लिये, इतनी स्वाध्याय कर ली, इतना पढ़ लिया.... तो कहने लगे कि इसके ध्यान में सब बात आ गई... अब इसका कल्याण हो जायेगा... किंतु भाई ! अंतर का मार्ग कोई और ही है। प्रकृति में इतनी विनय, नम्रता, स्वभाव की इतनी कोमलता होना चाहिये, मध्यस्थता भी चाहिये, पक्षपातवश अपना अहित न कर बैठे... ऐसी पात्रता तो आरम्भ में ही होना चाहिये... इतना भी जिसे नहीं है, उसमें धर्म की योग्यता नहीं है।

भाई, बातें तो बहुत-सी आती हैं। इस समय निश्चय का कथन चल रहा है; उसमें व्यवहार की रीति कैसी होती है, उसकी यह बात है।

छठवें गुणस्थान में वर्तते हुए संत-मुनि जिनके तीन कषायों का अभाव है, ज्ञान की कल्लोल में—आनन्द में जो झूल रहे हैं.... क्षण-क्षण में सातवाँ-छठवाँ-सातवाँ-छठवाँ गुणस्थान जिन्हें आता रहता है, ऐसे भावलिंगी संत भी कहते हैं कि—अहो, सर्वज्ञ परमात्मा का प्रतिबिम्ब—सर्वज्ञ परमात्मा के संत तो हमारे साधर्मी हैं.... अपने साधर्मी के प्रति हमें अतिविनय... विनय... और बहुमान...।—इसप्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य जैसे महान संत भी कहते हैं। जो छठवें गुणस्थान में झूल रहे हैं, उन्हें भी ऐसा प्रमोद आता है।

यहाँ तो अभी जिज्ञासा और सुनने की भी योग्यता न हो, वहाँ ज्ञानी कौन और धर्मात्मा कौन ? ....हम उससे अधिक हैं .....हम उससे आगे निकल गये हैं—ऐसा मानते हैं, यह तो दिशा फेर है, यह कोई अंतरंग दशा नहीं है—अंतर की वस्तु नहीं है। प्रारम्भ से ही राग की मंदता की इतनी योग्यता होना चाहिये कि—सुनते ही अंतर से आह्लाद आये। उसके बदले जिसे ऐसा लगता है कि यह तो हमें आता है, यह तो हमने सुना है, उसमें योग्यता ही नहीं है। ''महाराज तो प्रतिदिन एक ही बात कहते रहते हैं... यह तो हमने सुन ली !'' अरे भाई, सुन तो सही ! तूने सुन लिया और जान लिया, इसलिये ज्ञान हो गया—यह तो महान स्वच्छंद है। जहाँ पहले अंतर में इतनी योग्यता न हो, वहाँ धर्म कहाँ से प्राप्त करेगा ? जिसकी पात्रता हो, उसे तो अंतर में ऐसा विचार आता है कि—आहाहा ! हम तो ज्ञानी के दास हैं... दासानुदास हैं... चरणसेवक हैं।—ऐसी भक्ति देव-गुरु-शास्त्र तथा ज्ञानी के प्रति होती है। जिनके भावों में ऐसी विनय न हो, वह भले ही नवपूर्व का पाठी हो, तथापि उसका वह ज्ञान शून्यवत् है।

और उस परलक्ष में वृत्ति के प्रवाह की मर्यादा राग की मंदता जितनी है। गुरु उपदेश से प्राप्त

कर लेता है—ऐसा कहा जाता है, और दिव्यध्वनि से भी प्राप्त न कर पाया—ऐसा भी कहा जाता है। दिव्यध्वनि से प्राप्त न कर सका और गुरु उपदेश से प्राप्त कर लिया? "गुरु क्या कहता होगा? गुरु गुरु की जाने, मैं तो अपनी कहता हूँ।" (-यह बात धर्मदासजी) ने कही है।

अचल ज्ञानस्वरूप, उसमें स्वोन्मुखता की दृढ़ता और उसके वेदन-अनुभवन के बिना बाह्य भक्ति, व्रत, दान या पूजादि के भाव से तीन काल-तीन लोक में तेरी मुक्ति नहीं हो सकती। अरे, उसके द्वारा मिथ्यात्व में से भी छुटकारा नहीं मिलेगा। तथापि मिथ्यात्व से मुक्त होने के काल से पूर्व उपरोक्त कथनानुसार विनयादि का भाव आये बिना नहीं रहता और उसके पश्चात् भी —सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होने के पश्चात् भी—उसे ज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा, उनकी स्थापना—प्रतिबिम्ब, उनके द्रव्य की योग्यता,—(तीर्थंकर या सर्वज्ञादि होने की); उनके भाव के प्रति बहुमान आये बिना नहीं रहता, यद्यपि इन सबकी मर्यादा विकल्पपर्यंत है, परंतु उसे उड़ाकर कोई अंतर में प्रविष्ठ हो जाये या सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर ले—ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं हो सकता; और उसके कारण प्राप्त कर ले—ऐसा भी नहीं है।

शास्त्र में आता है कि—ज्ञान की आसातना, ज्ञान की विराधना, ज्ञान का निह्नव—यह सब ज्ञानावरणीय का बंध करने के कारण हैं। ज्ञानी की आसातना, ज्ञानी का विरोध, ज्ञानी को अंतराय—(उसके अपने ज्ञान में या दूसरे मानें-समझें उसमें)—वह सब मोहनीयकर्म और ज्ञानावरणीयकर्म की चिकनी काट का बंध करानेवाले हैं। विनयादि का भाव होता अवश्य है, किंतु चिदानंद मूर्ति भगवान आत्मा उसमें तन्मय नहीं है। ज्ञान प्रकाशी आत्मा तीन काल-तीन लोक के पदार्थों में न तो कभी तन्मय हुआ है, न है, और न होगा। ज्ञान का पिण्ड चैतन्य ज्योति आत्मा अकेला है; उसमें लीनता करके अनुभव करना ही मुक्ति का मार्ग एवं परमार्थ है; अन्य कोई मार्ग नहीं है।

परंतु इस मार्ग को सुनकर फिर व्यवहार के मार्ग का तिरस्कार करे भूल जाये तो यह मार्ग नहीं है। इसलिये दो बातें ली थीं। पहले भक्ति की और फिर दान की। भक्ति चाहिये; देव-गुरु-शास्त्र की विनय, ज्ञानी की विनय तथा बहुमान चाहिये। आचार्यदेव कहते हैं कि लोभरूपी कुएँ की खोह में पड़े हुए प्राणियों पर करुणा करके उन्हें उबारने के लिये दान का उपदेश दिया है; किंतु कोई ऐसा मान ले कि इससे हमारा कल्याण हो जायेगा अथवा यही पार होने का उपाय है, तो यह उसकी भूल है... इससे तो पुण्य का बंध होगा और धूल मिलेगी।

एक श्रोता ने कहा—मंदकषाय हो तो नरम तो पड़ेगा न ?

भाई, वास्तव में नरम नहीं पड़ता..... यह तो बात ही और है। यह बात तो पहले कही है कि—धर्मात्मा की तथा देव-गुरु-शास्त्र की विनय और बहुमान होता है; उन पर आक्षेप, उनका विरोध, उनकी निंदा, उनकी अविनय—कुछ भी हो तो मिथ्यात्व का बंध होता है। फिर चाहे जितनी पढ़ाई हो और चाहे जितना बड़ा त्यागी-मुनि होकर २८ मूलगुणों का पालन करता हो, तथापि मिथ्यादृष्टि है। जो सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो, उनका भी कोई अनादर या अविनय करे तो मिथ्यात्व का बंध करके ७० कोड़ाकोड़ी की स्थिति बाँधता है। परंतु यह तो स्वभाव की वस्तु है; इतने में ही इसका समावेश नहीं होता।

बम्बई में कोई कह रहा था कि—'अंत में तो महाराज को दान पर ही आना पड़ा!'—किंतु भाई! जिसे आत्मा का अकषायस्वरूप पकड़ना है, उसे तृष्णा की मंदता तो चाहिये न!—'राग का कण भी जगत का है; जगत में मैं नहीं हूँ और मुझमें जगत नहीं है'—ऐसी निर्लेप-निस्तुष दृष्टि जिसे करना है; तथा मैले का एक कण भी जिसमें नहीं है; भगवान आत्मा ज्ञान का पिण्ड, चैतन्यमूर्ति, त्रिकाल राग से बिलकुल पृथक् तत्त्व जिसे अपनी दृष्टि में बिठाना है, उसे ऐसी राग की मंदता या दानादि का भाव न हो, ऐसा नहीं हो सकता। वह सब होता अवश्य है, किंतु वह धर्म या कल्याण है या उसमें धीरे-धीरे सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे—आत्मा में प्रवेश करेंगे—ऐसा कोई मानता हो तो भाई, यह तो बड़ी भारी भूल होती है।

आत्मा 'निर्भयराम' है; उसमें भय कैसा ? चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा में राग या विकल्प नहीं है। वास्तव में भगवान आत्मा निर्भयराम चैतन्य-ज्योति है, उसे दुनिया में भय कैसा ? उसने तो भय टालकर फेंक दिया है! जिसके स्वभाव में भव नहीं—ऐसा भगवान आत्मा है... उसे भय नहीं; डर नहीं, दुनिया की गरज नहीं.... जगत, जगत में है और आत्मा, आत्मा में। विकल्प उठते हैं, वे सब जगत में हैं, उनके साथ आत्मा तन्मय नहीं है।—ऐसा आत्मा का स्वभाव अंतर्दृष्टि में लेकर ज्ञान की निर्मल कणिका अर्थात् सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय प्रगट हो, वही निस्तुष परमार्थ मार्ग है; अन्य कोई मार्ग तीन काल-तीन लोक में नहीं है।

दर्शन-ज्ञान में प्रवृत्त परिणतिमात्र शुद्धज्ञान ही एक है—ऐसा जो निस्तुष-निर्मल अनुभवन, सो परमार्थ है; क्योंकि वह अनुभवन स्वयं शुद्ध द्रव्य के अनुभवस्वरूप है। व्यवहार होता अवश्य है, किंतु प्रथम व्यवहार, फिर निश्चय—ऐसा नहीं है; और निश्चयभान होने के पश्चात् यदि

व्यवहार बिल्कुल न हो तो केवलज्ञान हो जाये। व्यवहार के स्थान में व्यवहार होता है; करना पड़ता है—ऐसा नहीं है, किंतु होता है; विकल्प के समय वैसा भाव होता है; भक्ति आती है; गुरु के निकट जाकर आलोचना-पाठ पड़ता है, प्रायश्चित्त लेता है; क्योंकि उस समय जड़ की क्रिया वैसे ही होता होती है; विकल्प उठने का काल वैसा ही होता है; परंतु उससे वस्तु का स्वभाव जो ज्ञाता-दृष्टा है, उसका भान नहीं चला जाता। स्वभाव का भान रखकर वैसे भाव करता है; परंतु उन भावों का स्वभाव के साथ एकमेक माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। सत्यस्वभाव का आश्रय क्या है, कहाँ उन्मुख होना चाहिये और उन्मुखता की दशा कैसी होती है—इसकी उसे प्रतीति नहीं है।

शुद्धज्ञान का अनुभव स्वयं शुद्धद्रव्य के अनुभवनस्वरूप होने से उसी को परमार्थपना है। ज्ञानानंदस्वभाव भगवान आत्मा ने अपने स्वभावोन्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और वेदन किया, अनुभव किया—आनन्द की प्राप्ति वेदन में आयी;—उस दशा को मोक्षमार्ग तथा धर्म कहा जाता है। स्वयं अपने स्वभाव का अनुसरण करके दशा का उत्पन्न होना, वह एक ही मार्ग है।

आत्मा की शक्ति विस्तृत सागर के समान पड़ी है; सागर जैसा उसका अथाह स्वभाव है; उसका अनुसरण करके दशा उत्पन्न होना, वह एक ही मार्ग है, अन्य कोई मार्ग नहीं है।

[—शेष अगले अंक में]

— ''ज्ञानी जो कार्य करते हैं, वह अद्‌भुत है। सत्पुरुष के वचन बिना विचार नहीं आता, विचार के बिना वैराग्य नहीं आता; इसलिये सत्पुरुष के वचनों का विचार बारम्बार करना चाहिये।''

— ज्ञान तो वही है जिससे जीव की बाह्य वृत्तियाँ रुकती हैं; संसार पर से हरेक से प्रीति कम होती है, सच्चे को सच्चा जानता है और जिससे आत्मा में गुण प्रगट होते हैं, वह ज्ञान।

[—श्रीमद् राजचंद्र]

आराधना

❀ रत्नत्रय की आराधना में स्वद्रव्य का ही सेवन है, परद्रव्य का सेवन नहीं है। जो जीव ऐसे रत्नत्रय की आराधना करता है, वह आराधक है और ऐसा आराधक जीव रत्नत्रय की आराधना द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करता है—यह बात जिनमार्ग में प्रसिद्ध है। रत्नत्रय की आराधना पर के परिहार-पूर्वक आत्मा के ध्यान से होती है।

❀ सम्यग्दर्शन से जो शुद्ध है, वही शुद्ध है।

सम्यग्दर्शन का आराधक जीव अल्प काल में सिद्धि प्राप्त करता है। सम्यग्दर्शनरहित जीव इष्टसिद्धि को प्राप्त नहीं होता।—इसप्रकार मोक्ष की सिद्धि के लिये सम्यग्दर्शन की आराधना प्रधान है।

❀ जिनवर देव ने गणधरादि शिष्यजनों से उपदेश में ऐसा कहा है कि—हे भव्य जीवो! धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना कोई धर्म नहीं होता। जगत में प्रसिद्ध है कि जिस वस्तु की प्राप्ति करना हो, पहले उसकी प्रीति-रुचि-पहिचान करते हैं; उसीप्रकार मोक्ष की प्राप्ति के लिये पहले उसकी प्रतीति-रुचि-पहिचान करना चाहिये। मोक्ष कहो या शुद्धात्मा कहो,—उसकी प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है।

❀ सम्यग्दर्शन होने से पूर्व क्या करना चाहिये ?

सम्यग्दर्शन से पूर्व उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये। श्रावक को सम्यग्दर्शन का ध्यान करना चाहिये, उसके ध्यान से दुष्टकर्मों का क्षय होता है। जिसे सम्यग्दर्शन न हुआ हो, उसे सम्यक्त्व का स्वरूप जानकर उसका ध्यान करने से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। सर्व जीवों के लिये सम्यग्दर्शन सारभूत है—सर्व उपदेश का वही सार है। सत् का, धर्म का या मोक्षमार्ग का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से होता है, इसलिये प्रथम सम्यग्दर्शन की आराधना कर्तव्य है।

❀ सम्यग्दर्शन के प्रयत्न के लिये अंतर में रात-दिन एक ही मंथन कर-करके स्वरूप का निर्णय करे... अपना कार्य सिद्ध करने के लिये परम उत्साहपूर्वक गाढ़ रुचि से दिन-रात मंथन करके निर्णय करना चाहिये। निर्णय का बल दृष्टि को अंतर्मुख करता है।

❀ हे जीव! सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र की आराधना भी हो सके तब तो उत्तम ही है, वह तो साक्षात् मोक्ष का कारण है; और यदि ऐसे चारित्र की आराधना करने की शक्ति इस समय तुझमें न हो, तो यथार्थ मार्गश्रद्धारूप सम्यग्दर्शन की आराधना तू अवश्य करना। सम्यग्दर्शन की आराधना से भी मोक्षमार्ग का आराधन बना रहेगा। सम्यग्दर्शन का आराधक अल्प काल में चारित्र प्रगट करके, केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त करेगा। जो सम्यग्दर्शन की आराधना से भ्रष्ट है, वह तो मोक्षमार्ग से ही भ्रष्ट है; इसलिये हे जीव, तू सर्व उद्यम से अवश्य सम्यग्दर्शन की आराधना कर!

श्री तारणस्वामीकृत ज्ञानसमुच्चयसार के ऊपर

पूज्य श्री कानजी स्वामी का प्रवचन

तारीख २४-९-६२, सोनगढ़

ज्ञानसमुच्चय का अर्थ सम्यग्ज्ञान का समूह और उसका सार। सर्वज्ञ परमात्मा ने सारभूत क्या कहा है? सर्वज्ञ की वाणी द्वारा श्रुतज्ञान का प्रवाह चला आया है, उसी परम्परा में आचार्यों ने क्या कहा है, वह श्री तारणस्वामी कहते हैं। उसमें प्रथम धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है, वह कैसे प्रगट होता है, सो बतलाते हैं। रागादि से भिन्न ज्ञाता स्वभाव है, उसके सन्मुख होना कैसे बने? यह समझने की, निर्णय करने की बात ही सर्वप्रथम अत्यंत आवश्यक है। सम्यग्दर्शन की व्याख्या ही प्रथम मांगलिक है।

प्रथम श्लोक में शुद्धात्मा या सिद्ध भगवान को नमस्कार किया, दूसरे श्लोक में स्वयं ही जो अपने स्वभाव में स्थित है, रत्नत्रयमय है, ऐसे पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया है।

श्लोक २५ में प्रथम ही सम्यग्दर्शन की आवश्यकता बतलाई है, उसमें कहा है कि जिनेन्द्र भगवान कथित निर्दोष शुद्ध अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन भव्य जीवों को साधने योग्य है, जो प्राप्त होते ही अनंत गुणों के धारक ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव होता है।

भगवान की पूजा करे, शास्त्र को नमस्कार करे या पढ़े किंतु भेदज्ञान द्वारा भाव समझे बिना कुछ लाभ नहीं है। शास्त्र मात्र पूजन-वंदन करने के लिये नहीं हैं, शास्त्र स्वाध्याय करके सर्वज्ञ वीतराग कथित सात तत्त्व, देव-शास्त्र-गुरु का यथार्थ स्वरूप समझकर भेदज्ञान द्वारा स्वसन्मुख होकर निश्चय अर्थात् शुद्ध सम्यग्दर्शन जैसा कि सर्वज्ञ वीतरागदेव ने कहा है, वैसा अपनी आत्मा में प्रगट करे, तब व्यवहार ज्ञान और उसके विषयभूत वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा को निमित्तरूप में सच्ची श्रद्धा के तरीके माना ऐसा कहने में आता है।

जैनमत के सिवाय अन्य कहीं भी मोक्षमार्ग का यथार्थ स्वरूप नहीं है, इसलिये अन्यमतों के साथ जैनधर्म का समन्वय नहीं हो सकता। सर्वज्ञ वीतराग पद जिसने प्रगट किया है, उसको वीतराग विज्ञानस्वरूप १८ दोष रहित जानकर नमस्कार किया है। त्रैकालिक द्रव्य-गुणों में जिनत्व था - वह प्रथम शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान द्वारा अपने पुरुषार्थ से प्रगट किया, यह जिनपद की बात है, जिनपद आत्मा का है, शरीर का नाम जिनपद नहीं है।

व्यवहाररत्नत्रय तो शुभरागरूप है, आस्रवतत्त्व है, बंध का कारण है, इसलिये वह जिनपद या जिनपद का सच्चा कारण नहीं है।

''जिन सो ही है आतमा अन्य सो ही है कर्म
ए ही वचन से समझले जिन प्रवचन का मर्म''

जिन—मोह-क्षोभ रहित वीतराग-विज्ञानमय आत्मस्वभाव है, वह जिनपद जिसने अपनी वर्तमान प्रगट दशा में प्राप्त किया, उनका आदर और स्मरण करके जो श्रद्धान करते हैं, उसे सर्वज्ञ भगवान के प्रति सच्चा बहुमान आता है। मंगल पाठ में श्री अरहंत, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञ केवली प्रणीत धर्म को मंगलरूप मानने में आता है। प्रथम अरहंत को नमस्कार क्यों किया जाता है ? उनकी वाणी द्वारा विशेष उपकार होने से प्रथम उनको नमस्कार किया जाता है।

अगर कोई कहे कि केवलज्ञानी परमात्मा हो जाने के बाद वाणी नहीं होती, यदि ऐसा हो तो उसे केवलज्ञान है और मोक्षमार्ग का स्वरूप क्या है, उसका उपदेश, और मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति सिद्ध नहीं होगी—किंतु केवली भगवान को तीर्थंकर पद में इसप्रकार का निमित्त-नैमित्तिक संबंध सहज

बनता है। निश्चयनय से भगवान की वाणी नहीं है, किंतु निमित्त-नैमित्तिक संबंध जितना व्यवहार है, ऐसी सर्वज्ञ कथित सत्यार्थ देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा है, वह रागरूप भेदवाली श्रद्धा है, उसे सम्यग्दर्शन कहना व्यवहार है।

यहाँ शुद्ध अर्थात् निश्चयसम्यग्दर्शन कहने का अभिप्राय है, जो विपरीत अभिप्रायरहित तत्त्वार्थश्रद्धान, स्व-पर का श्रद्धान, आत्मा का श्रद्धान जो शुद्धात्म का प्रतिभास सहित है, जो शुद्धात्म द्रव्य के अभेद आलंबन द्वारा ही निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, यही शुद्ध सम्यग्दर्शन है।

तारणस्वामी कहते हैं कि जैसा सर्वज्ञ भगवान ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा है, वैसा ही मैं कहूँगा। अपने शुद्ध चिदानंद ध्रुव स्वभाव के सन्मुख होने से अभेद अनुभव होता है, ऐसे सम्यग्दर्शन को सर्वज्ञदेव ने शुद्ध सम्यग्दर्शन कहा है, जो चतुर्थ गुणस्थान से प्रगट होता है, बाद असद्भूत व्यवहारनय से जानने योग्य व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र क्या है, वह भी कहेंगे।

श्लोक ७९ में कहा है कि यह आत्मा परमात्मा के समान है, दोनों के स्वभाव में निश्चय से कोई अंतर नहीं है, यह आत्मा परमानंद में कल्लोल करनेवाला है। परमात्मा परम शुद्ध है। गाथा ८० में कारण-कार्य के विषय में कहा है कि, कारण से ही कार्य की सिद्धि होती है, सच्चा कारण वही है जिसके द्वारा कार्य को सिद्ध करने का पुरुषार्थ किया जा सके, यहाँ मोक्ष के साधन में कारण कार्य दोनों शुद्ध है, निश्चयसम्यग्दर्शन कार्यरूप से शुद्ध है तो उसका कारण भी निज शक्तिरूप शुद्धात्म द्रव्य है। शुद्ध कारण-कार्य का प्रथम निर्णय करना चाहिये। अभूतार्थ-व्यवहार अर्थात् पराश्रय से, राग से या निमित्त से या शास्त्रों के शब्दों के आलंबन से सम्यग्दर्शन नहीं होता किंतु राग की उत्पत्ति होती है। शुभराग से लाभ मानने से मिथ्यात्व का लाभ होता है।

शुद्धात्मा की श्रद्धा और उसका उद्यम करना, वह क्या है कि त्रैकालिक कारणपरमात्मा, कारणशुद्धस्वभाव जो कि शुद्ध ही है, उसका आलंबनरूप पुरुषार्थ व कार्य भी शुद्ध है। मोक्षमार्ग का साधन दो प्रकार का नहीं है किंतु उसका निरूपण दो प्रकार से है, असद्भूत व्यवहारनय के विषयरूप व्यवहार तो राग है, विकल्प है, उसके पुरुषार्थ से शुद्ध कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

मोक्षमार्ग का सच्चा कारण अंतरंग में निज कारणपरमात्मा जो तीनों काल शुद्ध है, उसी में एकत्व और एकाग्रता करनेरूप पुरुषार्थ द्वारा शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी कार्य होता है, यह नियम है, व्यवहार निमित्तरूप में होता है किंतु वह सत्यार्थ कारण नहीं है। श्री

कुंदकुंदाचार्यदेव ने कहा है कि—

ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु समाइट्ठी हवई जीवो॥११॥

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आतमा, सुदृष्टि निश्चय होय है॥११॥

समयसार की यह गाथा जैनशासन का प्राण है।

देखा, गाथा ८० में शुद्धकार्य का कारण शुद्ध ही माना है, पराश्रय रागरूप व्यवहार तो अशुद्ध है, उसमें शुद्धतारूप कार्य करने का सामर्थ्य कहाँ है? वर्तमान में कारण-कार्य समझने में बड़ी गड़बड़ हो रही है। तारणस्वामी ने स्पष्ट कहा है कि पुरुषार्थ भी शुद्ध, और उसका कार्य सम्यग्दर्शनादि भी शुद्ध, अथवा त्रैकालिक आत्मद्रव्य शुद्ध और उसके आश्रय से होनेवाली पर्याय भी शुद्ध। लोग, व्यवहार करते-करते निश्चय अर्थात् शुद्ध धर्म होगा ऐसा मानते हैं, यह बड़ी भारी गड़बड़ है।

जिनेन्द्र भगवंतों ने धर्म का कारण और कार्य शुद्ध कहा है, निमित्त और शुभराग तो स्वभाव से विरुद्ध है, पृथक् है, वे सच्चे कारण नहीं हैं, जहाँ शुभराग को निमित्तरूप में शुभकारण कहा हो तो ऐसा समझना चाहिये कि वह सच्चा कारण नहीं है, किंतु निमित्त का ज्ञान कराने के लिये असद्भूत व्यवहारनय से ऐसा कहा है। अतः बुद्धिमानों को शुद्ध कारण कार्य का पुरुषार्थ करना चाहिये।

ममल पाहुड़ भाग २, पृष्ठ १५२, गाथा ११ में ध्रुव शुद्ध द्वारा वाच्यरूप शुद्ध ध्रुव आत्मा कहा है। वीतराग भगवान की वाणी में ध्रुव शुद्ध आया, वाणी के प्रकाश द्वारा आत्मा का प्रकाश हुआ, वह व्यवहार का कथन है, उसका भाव यह है कि अनंत गुणों का पिण्ड ध्रुवरूप ज्ञायक चिदानंद आत्मा है, उसमें दृष्टि देने से (सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा) सम्यग्दर्शनरूपी शुद्ध कार्य प्राप्त होता है, और उसी का नाम समताभाव है। चारित्र की शुद्धता के लिये भी शुद्ध पुरुषार्थ ही कारण है। निमित्त-व्यवहार निमित्तमात्र है; सच्चा कारण नहीं है।

भगवान की वाणी का प्रकाश होने से ज्ञान होता है, इसका क्या अर्थ? कि शब्द तो निमित्त है किंतु स्वयं निज शक्ति को सम्हाल कर ध्रुव स्वभाव का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करे, तब वाणी को निमित्त कहा जायेगा।

भगवान की वाणी उत्कृष्ट निमित्त है। यदि उससे ज्ञान होता हो तो अनंत बार समवसरण में भगवान की सभा में गया; क्यों ज्ञान नहीं हुआ ? किंतु जब भेदज्ञान द्वारा आत्मा स्वसन्मुख हुआ, तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान में स्वसंवेदनरूप पुरुषार्थ द्वारा ध्रुवरूप आत्मा का प्रकाश-अनुभव में आता है। राग में से या निमित्त में से तो शुद्ध कार्य होता नहीं, किंतु अपनी पर्याय में से नयी पर्याय आती नहीं, लेकिन द्रव्यस्वभाव में से—स्वाश्रय से धर्मरूप शुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

ज्ञानसमुच्चयसार गाथा २५ में कहते हैं कि उसी शुद्धकारण द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूपी शुद्ध कार्य भव्य प्राणियों द्वारा साधने योग्य है। सम्यग्ज्ञानी आत्मा के हृदय में अनंत गुणों का पुँज आत्मा प्रकाशित होता है अर्थात् अपने स्वसंवेदन ज्ञान में ज्ञेय होता है, वही स्वसन्मुखता से होनेवाली सम्यग्ज्ञानरूपी शुद्धपरिणति, वह जिनशासन है। अंतर्मुख दृष्टि करने से ही सम्यक् प्रतीति होती है, आत्मदेव अनुभव में आता है, वह साधने योग्य है, अतः पराश्रय-व्यवहाररूप अशुद्ध साधन है, वह करने योग्य नहीं है। बीच में भूमिकानुसार निमित्तरूप में शुभरागरूप व्यवहार आ जाता है, किंतु वास्तव में वह अशुद्ध होने से साधने योग्य नहीं है।

स्वद्रव्य के आलंबन के बल से निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान-शांति ही शुद्ध कारण का शुद्ध कार्यरूप जानकर साधने योग्य है; व्यवहाररत्नत्रय का राग आता है किंतु वह निश्चय से आश्रय करने योग्य नहीं है। भूमिकानुसार शुभराग आये बिना नहीं रहता किंतु ज्ञानी उसे अपना कर्तव्य नहीं मानते, अज्ञानी (मिथ्यात्व के कारण) राग को अपना कर्तव्य मानते हैं, उसको भला मानते हैं। राग-द्वेष बड़ा पाप नहीं है, मिथ्यात्व ही सबसे बड़ा पाप है।

गाथा ३५० में कहा है कि अपने ज्ञातास्वरूप आत्मपद को भूल जाना व पुण्य-पाप में शुभाशुभराग में जाना, रागादि विकार और पर का कर्त्ता, भोक्ता या स्वामी बनना, वह चोरी है; अथवा श्री जिनेन्द्र कथित आगम वचनों का उलटा अर्थ करना, वह चोरी है, व्यवहार के कथन को निश्चय के समान सत्यार्थ मान लेना चोरी है, कभी पराश्रयरूप व्यवहार करते-करते शुद्धता हो जायेगी और कभी किसी को स्वाश्रय से शुद्धता होगी, ऐसे संशयवाद को अनेकांत मानना-मनाना, वह भी सबसे बड़ी चोरी है। जो जीव अपने गुण-पर्यायों को स्वतंत्र नहीं जानता, सम्यग्दर्शन क्या ? आत्मज्ञान क्या ? आत्मा का चारित्र क्या, इसका निर्णय नहीं करता, वह उसे प्राप्त कैसे करेगा ? आत्मज्ञान बिना व्रतादि शुभास्रव की क्रिया जो बंधमार्ग है, उसे भ्रम से मोक्षमार्ग मानकर चाहे जितना व्रत तप करे तो वह भी चोरी है, सत्य का विरोध है, सत्यस्वरूप भगवान आत्मा का विपरीत

मान्यता से खून हो जाता है, वह आत्मा की महान हिंसा करना है।

तेरा शुद्धस्वभाव अंतरंग में नित्य ज्ञानानंदमय है, उसका आश्रयरूप प्रयत्न न किया, शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान न किया व बाह्य क्रिया व्रत, तप, दया, दान, पूजादिक करे तो वह शुभराग पुण्यास्रव है। जो उस राग को धर्म मानते हैं, वे चोर हैं, ऐसा भगवान ने कहा है कारण कि उन्होंने भगवान की वाणी का विपरीत भाव ग्रहण किया है। पुण्य का निषेध नहीं है किंतु उसे आत्महितरूप धर्म मानने का निषेध है।

अपना चिदानंदस्वभाव है, उसके आश्रय से ही लाभ होता है, ऐसा भगवान का कहना है। यह न मानकर पराश्रय से-राग से, पुण्य से लाभ मानते हैं, इसलिये वे चोर हैं। आज तक ऐसा सत्य तारणस्वामी के शास्त्रों में है किंतु लोगों ने सत्य ग्रहण करने की दरकार नहीं की।

गाथा १८४ में कहा है कि मिथ्या अभिप्राय के कारण मिथ्यादृष्टिपना होता है, पर से भला, बुरा मानना, राग से लाभ मानना आदि की असत्य भावना करता है, इसलिये सर्वत्र असत्य और अज्ञान भाव ही दिखाई पड़ता है। जैसा भगवान ने देखा है, आगम में कहा है, उससे विपरीत ही मानना मिथ्याज्ञान का काम है। आत्मज्ञान रहित होने से बाह्य संयोग को और शुभाशुभ विकल्प जो अचेतन है, उन्हीं को देखता है, अंतरंग में प्रगट सचेतन ज्ञायकस्वभाव को देखता ही नहीं, यहाँ मिथ्यात्व कर्म के कारण विपरीत हो रहा है, ऐसा नहीं कहा है। हिंसादि भाव अशुभराग है, दया, दान, व्रतादि शुभराग है, सभी प्रकार के राग को अचेतन कहा है, कारण कि उसमें चैतन्य की जागृति नहीं है, अत: राग से लाभ माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं, जिसका फल एकेंद्रिय-निगोदवास है। श्री कुंदकुंदाचार्य का कथन भी इसी पद्धति का है। अष्टपाहुड़ में कहा है कि—जो कोई तिलतुषमात्र भी वस्त्र रखकर मुनित्व माने, वह निगोद (एकेंद्रिय) में जाता है। वस्त्र के राग का संबंध गृहस्थदशा तक है, तीन चौकड़ी कषायरहित दशा में ऐसा राग कभी भी नहीं रहता, ऐसी वीतराग विज्ञानमय भूमिका को न मानकर विरुद्ध मानता है—शुभराग आस्रव है, ऐसा न मानकर उससे संवर-निर्जरारूप मोक्षमार्ग मानता है, यह सब तत्त्वज्ञान का विरोध करनेरूप मिथ्यात्व ही है। मिथ्यात्व का फल निगोद है।

गाथा २६ में कहते हैं कि सर्वज्ञ भगवान ने जो सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहा है, वह स्वानुभूति द्वारा ही प्रगट होता है, वह सम्यग्दर्शन निश्चय-शुद्ध ही है, जिसमें किसी भी शंका का रूप या विषमता देखने में नहीं आती किंतु विषमता रहित, यथार्थता सहित अकेला अभेद शुद्ध

आत्मा ही स्वस्वरूप में निश्चल देखने में आता है, जो स्वानुभव प्रत्यक्ष, स्वसंवेदन प्रमाण से प्रसिद्ध है। क्या मयूरनी के अंडे में मोर नहीं है ? कलाधर मयूर कहाँ से प्रगट होता है ? अंडे में ऐसी शक्ति थी, वह ही विकसित होकर कलाधर मयूर बनता है। इसप्रकार अपनी ध्रुवशक्ति के साथ अपरिमित अनंत गुणों का धारक परमात्मस्वभावी आत्मा नित्यस्वरूप प्रत्यक्ष है, उसमें एकमेकपने की दृष्टि और एकाग्रतारूप पुरुषार्थ से ही प्रगट दशा में परमात्मा प्रकाशमान होता है, अनुभव में आता है। राग द्वारा या बाहर के किसी निमित्त के आश्रय से वह प्रगट हो, ऐसा कोई गुण आत्मा में नहीं है, और कोई शुभराग तथा निमित्तों में ऐसा कोई गुण नहीं है, जो आत्मवैभव को, निर्मल पर्याय को प्रगट करा सके। किंतु मैं ही निजशक्ति से सदा परिपूर्ण हूँ, मैं ही परमात्मा हूँ, परम स्वरूप का धारक हूँ, मुझमें अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख और बेहद वीर्यरूप अनंत चतुष्टय है, ऐसी निश्चय शुद्धनय द्वारा नि:शंक प्रतीति चौथे गुणस्थान से होती है, भव की शंका नहीं रहती।

भगवान की आज्ञा तो ऐसी है कि ऐसे शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान में जम जाना, निश्चल होना, अपने ज्ञानस्वभाव में अवस्थित रहना, ऐसी अपूर्व दृष्टिवाले आत्मा चारों गति में से किसी भी स्थान पर हो, उसे परद्रव्य परक्षेत्र, परकाल, परभाव जड़ कर्म इत्यादि कोई भी बाह्य पदार्थ अपने को साधक या बाधक दिखने में नहीं आता। सातवें नरक के क्षेत्र में भी अपना त्रैकालिक ध्रुव स्वभाव में दृष्टि लगाकर अपने असली स्वरूप को ग्रहण करने से नया सम्यग्दर्शन प्रगट हो सकता है। नरक की वेदना के कारण सम्यक्त्व नहीं होता, यदि ऐसा हो तो सभी को होना चाहिये, किंतु जिसमें इस जाति का पुरुषार्थ हो, वही सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है और कई साक्षात् तीर्थंकर के पास समवसरण में जानेवाले भी मिथ्यादृष्टि रह जाते हैं। अत: सम्यग्दृष्टि अपने नित्य स्वभाव के आश्रय द्वारा नि:शंक और निर्भय है। कोई भी अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, विघ्न (बाधा) कर सकते हैं — ऐसा नहीं देखता। अपने भावों से ही अपना भला-बुरा होता है, ऐसा जानकर पर में तथा रागादि विभावों में कर्ताबुद्धि छोड़कर ज्ञातास्वभाव में ही एकताबुद्धि और एकाग्रता करने की भागवान की आज्ञा है।

जो जीव सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, वही प्रौढ़ है, दृढ़ है, प्रमाण है, अनादिरूढ़ व्यवहारमूढ़पना से सर्वथा मुक्त है और प्रौढ़ विवेकवाला निश्चय में आरूढ़ होने से महान दृढ़ है, शुद्ध स्वरूप की दृष्टि हुई, उसने संयोग और शुभाशुभ विकल्प से दृष्टि हटा दी है।

आगमज्ञानरूप शास्त्रोक्त प्रमाण, नय विभागरूप युक्ति प्रमाण, सम्यग्ज्ञानी के उपदेश द्वारा-

गुरुज्ञान प्रमाण और स्वसंवेदनरूप स्वानुभव प्रत्यक्ष के प्रमाण द्वारा-आत्मा में दृढ़ निश्चयरूप निरंतर प्रगट रहनेवाला सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, इसलिये सम्यग्दर्शन शुद्ध है, दृढ़ है, प्रमाणभूत है—किंतु शुभराग के भेदरूप, देवादिक की श्रद्धारूप, व्यवहार सम्यग्दर्शन प्रमाण नहीं है, कारण कि वह रागरूप है, निमित्तमात्र है। अज्ञानी की व्यवहार श्रद्धा को व्यवहाराभास कहते हैं, उसे तो वह निमित्तकारण भी नहीं है। आत्मा में अपूर्व कार्य प्रगट किये बिना कारण किसका ?

व्यापारी लोग बही-खाते जाँचते हैं, अपने पिताजी वारसा क्या रख गये, वह बराबर देखते हैं किंतु सर्वज्ञ पिता ने, संतों ने आत्महित करने की क्या बात वारसा में छोड़ गये वह खोजते नहीं।

मुनिव्रतधार अनंतबार ग्रैवेयक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

इसलिये पराश्रयरूप, शुभ विकल्परूप व्यवहार सम्यक्त्व प्रमाणरूप नहीं है किंतु निश्चय सम्यग्दर्शन ही दृढ़ है, प्रमाण है, वह चारों गतियों में हो सकता है, महान अपूर्व पुरुषार्थ से साध्य है। प्रमाणज्ञान के भेद निश्चयनय और व्यवहारनय, ये दोनों नय हैं, उनका विषय भी है किंतु प्रयोजन को सिद्ध करना हो तो सत्यार्थ स्वरूप को ग्रहण करनेवाले निश्चयनय द्वारा ही हितरूप साध्य की सिद्धि होती है।

प्रथम ही पराश्रय से-व्यवहार से दृष्टि हटाकर अंदर में एकाकार अनादि-अनंत, ज्ञायकस्वभाव परम सत्य भगवान आत्मा के ऊपर दृष्टि करना चाहिये, इसके बिना अनंत बार चारों गतियों में भ्रमण किया।

भगवान ने कहा है कि स्वाश्रित, सो निश्चय और पराश्रित, सो व्यवहार, दोनों नयों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान करके किसी तत्त्व विचार करनेवाले आत्मार्थीजन की दृष्टि प्रयोजन के ऊपर जाती है, त्रैकालिक द्रव्यसामान्य वस्तु निज शुद्धात्म तत्त्व है। वर्तमान भेद का आश्रय दृष्टि में से छोड़कर अपने असली सामान्य एकरूप ज्ञायकतत्त्व पर दृष्टि देना, यही मैं हूँ—ऐसा अनुभव में जागृत रहना, यही प्रयोजन है, सम्यग्ज्ञानी की दृष्टि इसप्रकार निरंतर दृढ़ है, प्रमाण है।

गाथा २७ में सम्यग्दर्शन द्वारा आत्मा परमात्मा होता है जो रूपातीत, व्यक्त, विमल परमज्ञान स्वभावी आत्मा तीनों काल स्वरूपप्रत्यक्ष है, संपूर्ण है, शाश्वत् शुद्ध है, उसका स्व-संवेदन सहित आदर करना, शुद्ध, निश्चय सम्यग्दर्शन है। परमात्मा होने की ताकत तुझमें है। निश्चय अर्थात् शुद्ध, व्यवहार अर्थात् अशुद्ध। सर्वज्ञपद अविनाशी है—ऐसा निजपद में ही निश्चल होना है, ऐसे

विकल्प को भी छोड़कर सर्व रागरहित त्रैकालिक सर्वज्ञस्वभाव, वह शुद्ध पद है और वह ध्येय है। वर्तमान प्रगट पर्याय का भेद गौण करके, पराश्रय को व्यवहार कहकर बाह्य तत्त्व में डाल दिया और मुख्य जो सामान्य परिपूर्ण ध्रुवस्वभाव जो शक्तिरूप कारणपरमात्मा है, द्रव्य गुण और पर्याय शक्ति से अभेद है, वह ध्येय है, निश्चय है, शुद्ध है, वही आश्रय करने योग्य है; व्यवहार अशुद्ध है, आश्रय करने योग्य नहीं है।

निश्चयनय का विषय सत्यार्थ है, व्यवहारनय का विषय असत्यार्थ है। निश्चयनय के विषयरूप शुद्धात्मा के आश्रय से नियम से सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव की प्राप्ति होती है, और व्यवहारनय का विषय पर, पराश्रय और भेदवाला होने से उसका आश्रय करने से राग की उत्पत्ति होती है, और व्यवहारनय के आश्रय से आत्महितरूप लाभ मानने से मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती है। व्यवहार ज्ञान का प्रयोजन इतना है कि भूमिकानुसार निमित्त और भेद क्या है, उसे जानना। व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र निमित्तरूप होते हैं किंतु वह राग है, विकल्प है, उसका फल वीतरागता नहीं है। निश्चयनय का प्रयोजन शुद्धात्मा को ग्रहण करना है, शुद्धात्मा को ध्येय करनेवाला निश्चय सम्यग्दर्शन है, वह निश्चय से शुद्ध बुद्ध एक स्वरूप है, तीन लोक में श्रेष्ठ है। जो अपनी आत्मा को अनंत गुणों से परिपूर्ण शुद्ध परमात्मस्वरूप देखता है, मानता है, उसको कोई बाधा नहीं है। तीन काल तीन लोक में ध्रुव ज्ञायकस्वभाव को बाधा नहीं है। अंतरंग स्वरूप अनादि-अनंत शुद्धचेतना ध्रुव धातु है, इस दृष्टि से कोई भी आत्मा छोटा-बड़ा नहीं है। सभी आत्मा शक्तिरूप से सिद्ध परमात्मा के समान शुद्ध हैं। मेरा आत्मा भी शुद्धनय के द्वारा अंतर्मुख होकर देखने पर नित्य शुद्ध सहजानंद स्वरूप है, शाश्वत् पूर्ण जिसका ज्ञानानंदस्वरूप है, उसे ही सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय मानना चाहिये, आदरणीय मानना चाहिये।

आजकल समाज में यह मूलभूत बात चलती नहीं, बाह्य में और शुभराग में धर्म मानने और मनाने की बात चल पड़ी है। तारणस्वामी के शास्त्र में यह बात सुगमरूप से लिखी है किंतु उसका समझपूर्वक वांचन, श्रवण चलता नहीं है।

शास्त्र में जैसा अर्थ है, वैसा अर्थ न करे, दूसरा अर्थ करे, वह चोरी है। पराश्रय से, राग से, निमित्त से भला होना माने; प्रत्येक द्रव्य का उत्पाद-व्ययरूप परिणमन स्वतंत्र ही है, परतंत्र नहीं है—ऐसा न मानकर परतंत्र मानना वह भी तीन लोक और तीन कालवर्ती सभी पदार्थों को स्वतंत्र न माननेरूप महान चोरी है, मिथ्यात्व है।

सम्यग्दर्शन के विषयरूप भगवान आत्मा कैसा है ? निर्मल विज्ञानघन रूपातीत है, पुद्गल, शरीर, राग का संबंध उसमें नहीं है। अस्ति में कैसा है कि अहो!! तीनों काल निजसर्वशक्ति से परिपूर्ण और व्यक्त ज्ञानघन है, अनुभव में, सम्यग्ज्ञान में प्रगटरूप प्रतीति में आता है। उसी का श्रवण, मनन, स्मरण, आदर, आश्रय, महिमा करना चाहिये। द्रव्यस्वरूप चिदानंदघन आत्मा स्वयं निकट है–प्रत्यक्ष है, सदा ऐसा ही विद्यमान है, निर्मल अनंत गुणों की निधि है। उसका ज्ञान करे नहीं, उसको उत्कृष्ट मानकर उसे उत्तम मंगलशरणरूप जानकर उसकी महिमा लाते नहीं तो उसमें अंदर में एकमेक होकर झुकाव कैसे करे ? अपना परमतत्त्व सदा अपने में पूर्ण सामर्थ्य सहित सदा विराजमान है, 'मेरो धनि नहीं दूर दिशांतर मो मही है, मुझे सूजत नीके' उसके ऊपर दृष्टि न करे, तब तक राग की, निमित्त की महिमा लाकर अनादि से रुलता है, किंतु स्वाश्रित दृष्टि करे तो यह भूल क्षणिक होने से नाश हो सकती है।

मोह अर्थात् स्वरूप में असावधानी, अपने असली स्वरूप को भूल जाना, पर को अपना मानना, पर में राग में अपना कर्तृत्व स्वामित्व मानना, पर का मैं कुछ कर सकता हूँ, पर मेरा भला-बुरा कर सकता है इत्यादि पर में और राग में एकताबुद्धि। संयोग की ओर से देखना, स्वभाव की दृष्टि से नहीं देखना, यह सब मिथ्या अभिप्राय अनादि की भूल है, अपनी यह भूल के कारण ही दुःखी है।

जैसे कच्चे चने में मीठा स्वाद तो भरा है, किंतु प्रगट दशा में वह स्वाद नहीं आता, कच्चा चना खाने में तुरा लगता है और बोने से उगता है किंतु उसे सेंक दिया जाय तो प्रगट मीठा स्वाद आता है और बोने पर उगता भी नहीं है। इसप्रकार आत्मा में अप्रगट शक्तिरूप से सिद्ध परमात्मा के समान पूर्ण ज्ञान और परमानन्द भरा है, किंतु प्रगट दशा में विरुद्धता है। उसमें रुचिवाला जीव पराश्रय में, राग में दुःख न मानकर सुख मानता है, कर्ता, भोक्ता स्वामी हूँ, ऐसा मानता है किंतु भेदज्ञान द्वारा अपना ध्रुव शक्तिवान आत्मा का आश्रय करे तो मिथ्यात्व नष्ट होकर प्रगट दशा में अपूर्व दृष्टि, ज्ञान आनन्द प्रगट हो सकता है और भवभ्रमण भी नहीं होता। वीतरागी दृष्टि होने पर चारित्र के अल्प दोष हेयबुद्धि से ज्ञेय में डालकर राग हटे, ऐसा पुरुषार्थ करता है। अज्ञानी को संयोग और राग में एकताबुद्धि होने से राग के स्वाद को भला मानता है किंतु एकबार अंतरंग में त्रैकालिक स्वभाव जो पूर्णानंद से भरा है, उसमें दृष्टि दे तो अपना स्वाधीन अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका प्रगट दशा में स्वाद आने लगता है, उसका पुरुषार्थपूर्वक उद्यम करने का उपदेश है।

आत्मा सदा व्यक्त निर्मल गुणों की निधि है, भगवान आत्मा अनंत गुणों का, सर्वज्ञशक्ति का भंडार है, शुद्धदृष्टि द्वारा उसका अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी निर्मलदृष्टि में दृढ़ रहना चाहिये।

अपने असली स्वभाव के सन्मुख होने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, जो स्वरूपाचरणचारित्र सहित प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-वीर्य-आनन्द में अभेद आत्मा ही प्रकाशित होता है, जिससे आत्मा सदा पूर्ण अविनाशी पद में विराजमान होता है। निर्मल श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द ही मेरा रूप है, ऐसा अपने पूर्ण सामर्थ्य से प्रकाशित आत्मा का अनुभव करना, निर्विकल्प श्रद्धा करना, वही सम्यग्दर्शन है। आगम प्रमाण, युक्ति प्रमाण, गुरुगम प्रमाण और स्वानुभव प्रमाण के द्वारा स्पष्ट भावभासन होना चाहिये।

अटूट भंडार

[अचिंत्य आत्मवैभव दिखाकर वीतरागी संतों ने महान उपकार किया है]

आत्मा का ध्रुवस्वभाव ज्ञान एवं आनंद का ऐसा अटूट भंडार है कि उसमें से ज्ञान-आनन्द निकलते ही रहते हैं; चाहे जितने ज्ञान और आनन्द निकालो, किंतु उसमें टूट नहीं पड़ेगी—कमी नहीं होगी। आत्मा के ध्रुवस्वभाव में से आनन्द प्रगट कर-करके करोड़ों-अरबों-असंख्य वर्षों तक उसका उपभोग किया है, इसलिये अब वह कम तो नहीं पड़ जायेगा?—ऐसी शंका धर्मी को नहीं होती; धर्मी तो अपने ध्रुवस्वभाव का अवलंबन लेकर आनन्द के उपभोग में लीन हैं; स्वभाव की दृष्टि में वे ऐसे निःशंक हैं कि—सादि-अनंत काल तक सिद्धदशा में प्रति समय परिपूर्ण आनन्द भोगते ही रहेंगे, तथापि हमारे स्वभाव का आनन्द कम नहीं होगा—ऐसी हमारे ध्रुवस्वभाव की अचिंत्य शक्ति है। अहो! हमारे द्रव्य का ऐसा अचिंत्य सामर्थ्य है कि प्रतिसमय परिपूर्ण ज्ञान-आनन्द देते रहने पर भी अनंत काल में भी उसमें किंचित् न्यूनता नहीं आयेगी।

देखो, यह आनन्द का अटूट भंडार!!

आत्मा में ऐसा अटूट भंडार भरा है कि उसमें से जब भी निर्मलता निकालना हो, तब निकलती है और जितनी निकालना हो, उतनी निकलती है। अनादि काल से मलिनता की, इसलिये अब चैतन्य-खान में से निर्मलता देने की शक्ति नष्ट हो गई है—ऐसा नहीं है; आत्मस्वभाव की निर्मलता देने की शक्ति तो ज्यों की त्यों परिपूर्ण वर्त ही रही है; जब भी अंतर्मुख होकर उसे पकड़े, तब उसमें से निर्मलता प्रगट होती है। अपने में से निर्मलता दे-देकर द्रव्य कभी थक जाये या निर्मल-पर्याय देना बंद कर दे अथवा निर्मलता प्रदान करने की उसकी शक्ति टूट जाये, ऐसा कभी नहीं होता; द्रव्य की शक्ति रंचमात्र कम नहीं होती।

एक पर्याय बदलकर दूसरी, दूसरी बदलकर तीसरी, तीसरी बदलकर चौथी, चौथी बदलकर पाँचवीं.... इसप्रकार अनंत काल तक ज्ञान-आनन्द से परिपूर्ण पर्यायें ध्रुव स्वभाव में से लेते ही रहो... लेते ही रहो... तथापि ध्रुवशक्ति का भंडार किंचित् न्यून नहीं होता। अहा! ऐसी ध्रुवशक्ति के भंडार अपने आत्मस्वभाव को जो प्रतीति में ले, वह साधक हो जाये और उसके ध्रुव-भंडार में से ज्ञान-आनन्दमय निर्मल पर्यायों का प्रवाह अटूट चलता ही रहे। अहा, अपना अटूट भंडार जिसके हाथ में आ गया, उस जीव को बाह्य में से—राग में से या पर में से कुछ भी लाभ लेने की बुद्धि स्वप्न में भी क्यों रहेगी? वह तो अपने अटूट आत्म भंडार में से ज्ञान-आनन्द निकाल-निकालकर उनका उपभोग करता ही रहेगा।

वीतरागी संतों ने ऐसे अचिंत्य आत्मवैभव का भंडार दिखलाकर जगत के जीवों पर परम उपकार किया है।

खास समाचार

रखीयाल (गुजरात) में श्री नेमिनाथ भगवान के नूतन जिनमंदिर का शिलान्यास महोत्सव

परम उपकारी पूज्य गुरुदेव के पुनीत प्रताप और प्रभावना उदय से अनेक शहरों और गाँवों में जहाँ जिनमंदिर नहीं थे, वहाँ नूतन जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है, रखीयाल स्टेशन बाजार में भी नया जिमंदिर होनेवाला है, उसके शिलान्यास का अति उल्लासमय समाचार में श्री पंडित बाबूभाई चुनीलाल महेता तथा रखीयाल दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के प्रमुख श्री नगीनदासजी ने विस्तार से लिखा है। उसे संक्षेप में—हमारे आंगन में श्री जिनमंदिर शिलान्यास प्रसंग पर श्री नवनीतभाई जवेरी, श्री पूरणचंदजी गोदीका तथा उनकी धर्मपत्नी, श्री खीमचंदभाई शेठ, श्री मणीभाई शेठ आदि बहुत संख्या में बम्बई आदि जगह से खास पधारे थे।

मगसिर सुदी ११ तारीख ७-१२-६२ श्री जिनेन्द्र भगवान की भव्य रथयात्रा निकाली थी, जिनमंदिर के स्थान पर बड़े सुशोभित मंडप में पहुँचकर जिनेन्द्र भगवान का विधिपूर्वक शुद्ध जल से अभिषेक तथा पूजन हुआ।

ठीक ११.३६ बजे जय-जयकार के भारी हर्षनाद के साथ शेठ श्री पूरणचंद्रजी गोदीका तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमलाबहिन गोदीका (जयपुर) इनके शुभहस्त से शिलान्यास विधि करने में आयी। ऐसा शुभ प्रसंग अपने को प्राप्त हुआ उसकी खुशी में रुपये ११००१) जिनमंदिर बनवाने के लिये जाहिर किये। बाद रुपये २५०१) श्री नवनीतभाई सी० जवेरी, १५०१) श्री खीमचंद जेठालाल शेठ, (सोनगढ़), १५०१) श्री हरीलाल दोशी (अहमदाबाद) १५०१) शाह उगरचंद रायचंद (रखियाल), ११२५) शेठ नगीनदास (रखियाल), ११०१) श्री महेन्द्रकुमार सेठी (जयपुर) इसप्रकार और अन्य रकम मिलाकर कुल ४६२३५) रुपये हुआ। आसपास के २५-३० गाँवों से मेहमान आये थे। और बाहर गाँव से मुमुक्षु मंडलों के तार संदेश आये थे। सबेरे तथा दोपहर में पंडित श्री खीमचंदभाई द्वारा सात तत्त्व, निश्चय व्यवहार, प्रतिक्रमणादि तथा जिनेन्द्र भगवान की पूजा का स्वरूप इन विषयों पर बहुत सादी भाषा में हृदयस्पर्शी, वैराग्य भावों से भरपूर प्रवचन हुये। बाद आभार प्रदर्शन विधि, और मेहमानों का फूलहार द्वारा स्वागत करने में आया। अपने गाँव में नया जिनमंदिर निर्माण करने के लिये रखीयाल मुमुक्षु मंडल को धन्यवाद।

सुवर्णपुरी समाचार

परम उपकारी पूज्य गुरुदेव सुखशांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सबेरे मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ९ वाँ चलता है, उसमें तत्त्वार्थ श्रद्धान का रहस्य अलौकिक रीति से समझाने में आता है। दोपहर को श्री समयसारजी शास्त्र में गाथा २०-२१ चलती है। इस चौदहवीं बार के समयसार के प्रवचनों में तत्त्वज्ञान का विशाल अनुभव प्रत्यक्ष श्रवण करने को मिलता है। यह धर्म जिज्ञासुओं के लिये महान वस्तु है।

लाडूनवाले सेठ श्री बछराजजी गंगवाल तारीख ३०-११-६२ से यहाँ सपरिवार पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का तथा सत्समागम का लाभ लेने के लिये आये हैं।

गुजरात के कितनेक गाँवों में धर्म प्रभावना

पंडित श्री खीमचंदभाई शेठ, श्री नवनीतभाई, पूरणचंदजी आदि २५ श्रमणी भाई-बहिन फतेहपुर जाने के लिये रखीयाल से निकल कर तलोद स्टेशन पहुँचे। वहाँ विशाल दिगम्बर जिनमंदिर है, वहाँ भगवान के दर्शन किये, बाद, तलोद के जैन समाज द्वारा भारी स्वागत हुआ, श्री खीमचंदभाई को विनती करने से अपने दिगम्बर जैन मुनिराज सर्वदा सहज नग्न ही होते हैं, सम्यक् रत्नत्रय वह धर्म है आदि विषय पर प्रवचन किया बाद—

प्रांतिज तारीख ७-१२-६२ रात्रि को पहुँचे, जैन बोर्डिंग में सभी मेहमान का स्वागत करने में आया। श्री खीमचंदभाई ने केवलज्ञान स्वभावी आत्मा की पहचान और केवलज्ञान विद्या की प्राप्ति के लिये तत्त्वज्ञान में तैयार होने के लिये 'सा विद्या या विमुक्तये' इस कथन पर छात्रों को सुन्दर बोध दिया, छात्रालय को २५१) शेठ श्री नवनीतभाई ने, २५१) श्री पूरणचंदजी ने, १०१) श्री खीमचंदजी शेठ ने तथा अन्य मेहमानों ने भी दान में रकम दी थी, बाद सभी—

फतेहपुर रात्रि को आये। वहाँ आधा मील दूर से समस्त जैन-अजैन बंधुओं ने भारी स्वागत किया। भक्ति की धुन सहित जिनमंदिर में गये। वहाँ पंडित श्री खीमचंदभाई द्वारा मांगलिक प्रवचन हुआ, सारा गाँव सुशोभित किया गया था। तारीख ८-१२-६२ सबेरे जुलूस के रूप में हरेक जैन बंधुओं के घर पर मेहमानों को ले गये, भारी प्रेम भरा स्वागत किया, पाठशाला में बहिनों ने स्वागत गीत गाये, सबेरे श्री खीमचंदभाई द्वारा श्री समयसार शास्त्र पर प्रवचन हुआ, श्रोताओं की बड़ी संख्या थी, बड़े उल्लास से वे सुनते थे, (प्रशंसा के शब्द लेख में से काट दिये हैं)।

शेठ श्री खीमचंदभाई को श्री सेठ नवनीतभाई के शुभहस्त द्वारा फतेहपुर दिगम्बर जैन संघ की ओर से अभिनंदन पत्र दिया गया, तथा श्री नवनीतभाई को श्री खीमचंदभाई के वरदहस्त से फतेहपुर जैन संघ की ओर से अभिनंदन पत्र दिया गया। श्री खीमचंदभाई ने कहा कि मैं अभिनंदन के योग्य नहीं हूँ। अभिनंदन के योग्य तो श्री सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा हैं और पूज्य श्री स्वामीजी हैं। जीवन चाहे बड़ा हो या छोटा किंतु जिन्होंने जीवन में सम्यक् रत्नत्रय की प्राप्ति की है, उन्हीं का जीवन सफल है, वे धन्य हैं, वे वंद्य हैं। मैं तो सुवर्णपुरी के संत का मामूली सेवक हूँ। यह सब परम प्रताप उन्हीं का है। श्री नवनीतभाई ने कहा कि मैं भी अभिनंनदन के योग्य नहीं हूँ। आप वास्तव में धर्म और धर्म के आयतनों के प्रति परम उत्साह और प्रेम दिखाते हो। तत्त्वज्ञान का अभ्यास करते हो, मुझे बहुत आनन्द होता है। आप सभी पूज्य कानजी स्वामी द्वारा वीतरागमार्ग का अनुसरण करके शीघ्र आत्महित साधें, ऐसी मेरी भावना है। शेठ श्री खीमचंदभाई, श्री नवनीतभाई, श्री पूरणचंदजी इन्होंने हरेक ने २५१ रुपये पाठशाला में दिया। रात को जिनमंदिर में भक्ति होने के बाद श्री खीमचंदभाई का प्रवचन हुआ। मगसिर सुदी १३, सबेरे भी प्रवचन हुआ।

सोनासण में भी समस्त ग्रामवासी द्वारा मेहमानों का स्वागत हुआ। जिनमंदिर में दर्शन किये, पाठशाला की बहिनों ने स्वागत गीत गाये। रुपये ३५०) पाठशाला को दिया गया। फतेहपुर के समान यहाँ भी प्रवचन आदि कार्यक्रम थे। श्रोताओं की संख्या बहुत थी।

सलाल बाजार यहाँ भी पूर्ववत् स्वागत के बाद सेठ नवनीतभाई ने सभा में कहा कि आप साधर्मियों का प्रेम देखकर आप सभी का आभार मानता हूँ। मैं तो पूज्य स्वामीजी का लघु सेवक हूँ। देव-शास्त्र-गुरु और जिनेन्द्र शासन की प्रभावना के लिये मैं सदा तत्पर हूँ, आप सभी तत्त्वज्ञान का अभ्यास करके आत्मकल्याण साधें ऐसी भावना प्रगट करता हूँ। श्री जिनमंदिर में २५१ रुपये श्री नवनीतभाई ने तथा १०१ रुपये श्री पूरणचंदजी ने दिया। मगसिर सुदी १३ दोपहर को श्री

खीमचंदभाई का सलाल में बड़े ठाठबाट से स्वागत हुआ। बाद वहाँ प्रवचन भी हुआ, सभा में श्रोताओं की बड़ी भारी संख्या थी। बाद शाम को—

तलोद स्टेशन बाजार पहुँचे। वहाँ जुलूस से रूप में बाजार में घूमकर मंदिर में भगवान के दर्शन किये। बाद में खीमचंदभाई ने सच्चे देव के लक्षण के ऊपर आप्तमीमांसा के आधार से प्रवचन किया, रात को शास्त्र सभा में ७०० के करीब संख्या थी, उसमें श्री समयसार कर्ताकर्म अधिकार में से निमित्त-नैमित्तिक संबंध, निश्चय-व्यवहार तथा जिनेन्द्र पूजन का आध्यात्मिक रहस्य समझाया। बाद सबेरे एक घंटा व दोपहर को एक घंटा प्रवचन हुआ। तलोद बाजार जैन समाज की ओर से आभार प्रदर्शन करके पुनः ऐसा लाभ देने की विनती करने में आयी।

गुजरात में धर्म जागृति लाने का बड़ा यश पण्डित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल (फतेपुर) का है, उनको सत्धर्म के प्रति अपार वात्सल्य, और तत्त्वज्ञान प्रचार के प्रति सातिशय उल्लास है, इसलिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

फतेपुर (अहमदाबाद) में पोष सुदी ३ से पंचमी तक स्वस्तिक मंडल विधान पूजा का उत्सव था। बाहर गाँव से ३०० उपरांत मेहमान पधारे थे। श्री बाबूभाई द्वारा जिनेन्द्र पूजन, भक्ति, शास्त्रसभा का कार्यक्रम था।

★ ★ ★ ★ ★ ★

आध्यात्मिक-पद

हम तो कबहु न निज घर आये।
पर घर भ्रमत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये॥हम तो०॥
परपद-निजपद मान मगन ह्वै, पर परिणति लिपटाये।
शुद्ध, बुद्ध, सुखकंद मनोहर, चेतन भाव न भाये॥हम तो०॥
नर, पशु, देव, नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये।
अमल, अखंड, अतुल, अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये॥हम तो०॥
यह बहु भूल भई हमरी, फिर कहा काज पछिताये।
'दौल' तजो अजहूँ विषयन को, सत्गुरु वचन सुहाये॥हम तो०॥

अनेकांत का प्रयोजन

'हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि बाह्य व्यवहार के अनेक विधि-निषेध के कर्तृत्व की महिमा में कोई कल्याण नहीं है। यह कहीं ऐकांतिक दृष्टि से लिखा है अथवा अन्य कोई हेतु है, ऐसा विचार छोड़कर उन वचनों से जो भी अंतर्मुख होने की प्रेरणा मिले, उसे करने का विचार रखना, सो सुविचार दृष्टि है। ....बाह्य क्रिया के अंतर्मुखदृष्टिहीन विधि-निषेध में कुछ भी वास्तविक कल्याण नहीं है। ....अनेकांतिक मार्ग भी सम्यक् एकांत-निजपद की प्राप्ति कराने के अतिरिक्त अन्य किसी भी हेतु से उपकारी नहीं है; यह जानकर ही लिखा है। यह मात्र अनुकम्पा बुद्धि से, निराग्रह से, निष्कपट भाव से, निर्दम्भता से और हित दृष्टि से लिखा है; यदि इसप्रकार विचार करोगे तो यह यथार्थ दृष्टिगोचर होगा।...'

(श्रीमद् राजचंद्र, गुजराती, पृष्ठ ३४६-४७)

टेप रील द्वारा प्रवचन प्रचार

परम उपकारी पूज्य कानजी स्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का टेप रील द्वारा दो साल से सुचारूरूप से चल रहा है। जो-जो गाँव के जैन समाज की ओर से आमंत्रण आते हैं, वहाँ पर श्री मधुकरजी को भेजने में आता है। लश्कर-ग्वालियर और भिण्ड में जैन समाज ने सबसे ज्यादा लाभ लिया। दोनों शहरों में २५-२५ दिन का कार्यक्रम रहा। अशोकनगर में ९ दिन, 'मौ' तथा कुरबाई-४ दिन, भिलाईनगर-७, रायपुर-३, दुर्ग-३, खैरागढ़राज-१६ दिन, छुईखदान-३, डोंगरगाँव तथा डूंगरगढ़ में भी कार्यक्रम रखा गया था। तारीख ५-१-१९६३ ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

पत्र व्यवहार—

प्रचार विभाग, दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, पोस्ट-सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शक्तिवान को भजो-आस्तिकवादी जैन

बुढ़ापा, रोग, मरणादि में दु:ख और अशरणता देखकर एक नास्तिक आदमी ने दु:खी होकर आस्तिक ज्ञानी को पूछा कि हम सुखी होने के लिये क्या करें, किसको भजें। उत्तर मिला कि शक्तिमान अविनाशी को भज, किंतु परीक्षा करके। तब वह प्रथम तो चूहे को शक्तिवाले, मानकर चूहे की सेवा करने लगे, फिर बिलाव को फिर कुत्ते को फिर कुत्ते भी पत्नी के मार से डरकर भाग गया तो पत्नी को विशेष शक्तिमान मानकर सेवा करने लगे, फिर पत्नी को भी गुनहगार जानकर डंडा लगाया तो वह चिल्लाने लगी, भय से काँपने लगी तो सोचा कि ये शक्ति लकड़ी में है, फिर सोचा कि मैं जाननेवाला-इच्छा शक्तिवाला नहीं होऊँ तो लकड़ी वगैरह को कौन मानता, इसलिये मेरे में अनेक शक्ति है, यही महान है और इच्छा विकल्प, शरीर तो क्षणिक है अस्थायी पलटनेवाले हैं, उसी का आधार क्या ? अविनाशी शक्तियों का स्वामी मैं हूँ इत्यादि गुरु मुख से सुना था, उसका ऐसा निश्चय करने पर नि:शंक निर्भय हुआ, मेरा नित्य जाननहारा ज्ञायकभाव भगवान आत्मा मैं ही हूँ, अन्य कोई भी देव मेरे लिये शक्तिमान नहीं, शरण नहीं है, ऐसी बात अन्दर में जम गई। बहुत प्रसन्न हो गये और श्रीगुरु पास जाकर बड़े प्रेम से विनय करने लगा कि मैं आपको बड़े उपकारी गुरु मानता हूँ, मुझे सच्चा ईश्वरपना अपने में स्वतंत्र बतला दिया। मेरे धनी नहीं दूर दिशांतर मो मांही है मुझे सूझत नीके; बस स्वशक्ति से पूर्ण निजानन्द सन्मुख होकर सच्चा आस्तिकवादी जैन बन गया।

निजशुद्धात्मा में सम्यक्प्रकार ध्यान करने से निश्चय -व्यवहार मोक्षमार्ग प्रगट होता है, ऐसा नियम

मुनिदशा के उचित ध्यान का सामर्थ्य प्रगट करने से अर्थात् इसप्रकार शुद्धात्मद्रव्य के उग्र आलम्बन के बल द्वारा सातवें गुणस्थान में आता है, तब उसे मुनिपद के योग्य २८ मूलगुणरूप व्यवहार मोक्षमार्ग होता है। जहाँ तक श्रेणी चढ़ने का सातिशय-प्रचण्ड पुरुषार्थ प्रगट नहीं करता, तब तक मुनि बारम्बार सातवाँ-छठवाँ गुणस्थान में आते हैं, इसप्रकार मुनिदशा में ध्यान का सामर्थ्य ही ऐसा होता है कि जब निर्विकल्पदशा में स्थिर न रह सके, तब छठवाँ गुणस्थान के योग्य व्यवहार मोक्षमार्ग के विकल्प आते हैं।

चतुर्थ गुणस्थान प्रथम प्रगट होने के समय जो निर्विकल्प ध्यान प्रगट होता है, उस ध्यान से छूटकर जब वह अविरतसम्यग्दृष्टि सविकल्पदशा में आता है, तब उसे नि:शंकितादि आठ अंगरूप सम्यक् चरण होता है, उसका विस्तृत वर्णन के लिये बृहद्द्रव्य संग्रह गाथा ४१ की संस्कृत टीका; समयसार गाथा २२८ से २३६ देखना चाहिये।

सम्यग्दृष्टि कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और कुतत्त्वों को मानते नहीं तथा कुदेवादि के प्रति स्तुति, प्रशंसा, वंदन, नमस्कार, महिमा, आदर आदिरूप अनाचार उसे होता नहीं और वही जीव जब पंचम गुणस्थान के योग्य ध्यान का सामर्थ्य प्रगट करता है, तब निर्विकल्प ध्यान अल्पकाल के लिये होते हैं और उस ध्यान से छूटकर जब सविकल्पदशा में आता है, तब उसे उस भूमिका के योग्य अणुव्रतादि का आचरण होते हैं किंतु अव्रत के अशुभभाव होते नहीं।

यहाँ ऐसा समझना कि स्वसन्मुखतारूप ध्यान में ही ऐसा सामर्थ्य है कि जीव ध्यान के द्वारा निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्ग (श्रावक या मुनिपद की भूमिकानुसार) प्राप्त करते हैं, वहाँ जितना वीतरागभाव है, उतने अंश सच्चा मोक्षमार्ग है, जितना शुभराग है, वह व्यवहार-उपचार मोक्षमार्ग है। अत: प्रथम व्यवहार और व्यवहार करते-करते बाद में निश्चय, ऐसा भगवान ने कहा नहीं है।

छहढाला

(सुबोधिनी विस्तृत टीका) स्व० पंडित दौलतरामजी विरचित।

श्री सेठी ग्रंथमाला द्वारा यह एक बार छपते ही २२०० पुस्तक तुरंत बिक जाने से यह दूसरी बार २२०० पुस्तकें छपवाई हैं। गागर में सागरवत् उसमें जैन तत्त्वज्ञान भरा है, विशेष ज्ञानार्जन के लिये बहुत आवश्यक ग्रंथ है, उसमें रोचक ढंग से आत्महित का स्वरूप बताया है। बालक को भी समझने में सुगम हो ऐसी शैली है; खास मनन करने योग्य है, और जिज्ञासुओं में बाँटने योग्य है। थोक लेने पर कमीशन २५ प्रतिशत। पृष्ठ १६२, मूल्य ०-८५, पोस्टेज अलग।

ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव

दूसरी बार छप रहा है। माघ मास में तैयार हो जायेगा — सर्वोत्तम छपाई कागज आदि सहित।

लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका

(चौथी आवृत्ति)

पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)	दसलक्षण व्रत विधानपूजा	०-७५
नियमसार	५ ॥)	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
समयसार, पृष्ठ ६१६ बड़ा साइज	५)	मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
मूल में भूल (नई आवृत्ति)	।।)	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१.८५)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	छहढाला (नई टीका)	८७ नये पैसे
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह सजिल्द	१ ।=)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग १	४ ॥)	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानु.	८५ नये पैसे
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)	भेदविज्ञानसार	२)
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
समयसार प्रवचन भाग ४	४ ॥)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
प्रवचनसार	५)	स्तोत्रत्रयी	॥)
अष्टपाहुड़	३)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
द्वितीय भाग	२)	आत्मधर्म फाइल वर्ष १-३-५-६-	
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)	७-८-१०-११-१२-१३ वर्ष	३ ।।।)
द्वितीय भाग ॥-) तृतीय भाग	॥-)	शासन प्रभाव	=)
जैन बालपोथी	।)		
छहढाला मूल	१५ नये पैसे		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।